

वर्ष १ अंक १०
विक्रम संवत् २०७६ आषाढ
जुलाई २०१९

आर्ष क्रान्ति

वैदिक समाज व्यवस्था के लिए समर्पित



आर्ष लेखक परिषद्



ओ३म्

आर्य लेखक परिषद् का मुख पत्र

आर्ष क्रान्ति

जुलाई २०१९



वर्ष-१ अंक-१०,
विक्रम संवत् २०७६
दयानान्दाब्द- १६५
कलि संवत् - ५११६
सृष्टि संवत् -१,६६,०८,५३,१२०

प्रधान सम्पादक
वेदप्रिय शास्त्री
(७६६५७६५११३)

समन्वय सम्पादक
अखिलेश आर्येन्दु
(८१७८७१०३३४)

सह सम्पादक
प्रांशु आर्य (कोटा)
(६६६३६७०६४०)

सहयोगी सम्पादक
आरती (प्रयागराज, उ.प्र.)

आकल्पन
प्रवीण कुमार (महाराष्ट्र)

कवर पेज
रुथ (दिल्ली)

सम्पादकीय कार्यालय
ए-११, त्यागी विहार, नांगलोई,

अनुक्रम

विषय	पृष्ठ
१ वैदिक वाग्विज्ञान (सम्पादकीय)	०३
२ सभ्यताओं का धार्मिक और सांस्कृतिक.....	०७
३ Brahmin-Kshatriyas: Good and Bad	११
४ नयी गुलामी का सातवाँ दशक.....	१३
५ गुरु पूर्णिमा	१८
६ सामवेद में सौर्य आंधी का विवरण	१६
७ उपकरण संहार के ले (कविता)	१३
८ अन्धविश्वास के पोषक तुलसीदास	२१
९ धर्म पालक बेटियां	२५
१० लक्ष्मी किसे प्राप्त होती हैं	२६

ईमेल - aryalekhakparishad@gmail.com

वेबसाइट - <https://aryalekhakparishad.com/>

फेसबुक  आर्य लेखक परिषद्

वैदिक वाग्विज्ञान

जिसे संसार कहा जाता है उसमें सर्वत्र जो होता दिखाई पड़ रहा है वह यह है की वस्तुएँ बन रही हैं, बनने के बाद कुछ दिन बढ़ती हैं और एक निश्चित सीमा के पश्चात् वे क्षीण और विकृत होने लगती हैं और एक दिन नष्ट हो जाती हैं। इसे शास्त्रीय भाषा में उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय कहते हैं। दूसरी चीज जो दृष्टिगोचर हो रही है उसे जड़ता-चेतनता या सजीवता – निर्जीवता कहते हैं। एक भोक्ता और दूसरा भोग्य। जड़त्व भोग्य है और चेतन भोक्ता है। जो भोक्ता है उसके भोग और भोगने के साधन उसके स्वयं के बनाए नहीं होते। किसी अन्य के द्वारा प्रदान किए गए होते हैं। भोक्ता असंख्य हैं और विभिन्न आकार प्रकार के हैं। इन्हें प्राणी कहा जाता है। इनमें इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुख और ज्ञान देखे जाते हैं। इनमें कामना या चाह है, भूख है, प्यास है, न्यूनता है, अतृप्ति है। यह इनकी पूर्ति में ही लगे रहते हैं। जन्म से मृत्यु पर्यंत इनकी यही कहानी है। इनमें तीन प्रकार का सामर्थ्य होता है उसे ज्ञातृत्व, कर्तृत्व और भोक्तृत्व कहते हैं। परन्तु यह सामर्थ्य सीमित है। अतः सभी भोक्ता अल्पज्ञ और अल्प सामर्थ्य वाले हैं।

सभी प्राणियों में मनुष्य श्रेष्ठ है, अन्य प्राणियों से बहुत भिन्न है। इसमें अनेक विशेषताएँ ऐसी हैं, जो अन्य प्राणियों में नहीं है। परन्तु इसके पास भी जो कुछ है वह इसका स्वयं का बनाया हुआ नहीं है। जन्म के साथ ही इसे दूसरे सम्हालते हैं और यह जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत दूसरों से लेता ही रहता है। विचारणीय है कि मनुष्य के काम आने वाली वस्तुएँ या पदार्थ किसने बनाए हैं? बालक की माँ के स्तनों में दूध और शरीर में बहने वाला रक्त किसने बनाए हैं? धड़कने वाला हृदय, सोचने वाला मस्तिष्क, अंगों की सक्रियता, श्वसन प्रक्रिया आदि किसकी देन हैं? अग्नि, जल, सूर्य-चंद्र, आंख, नाक, कान आदि किसने प्रदान किए हैं? इसी प्रकार जो भाषा बोलता है वे शब्द किसने दिए हैं? इत्यादि।

वेदों में इस प्रश्न का समाधान मिलता है। वेद के शब्दों में एक तत्व ऐसा है जो – **अकामो धीरः अमृतः स्वयम्भू रसेन तृप्तः न कुतश्चनोनः॥ अर्थवेद**

10-8-44 अर्थात् अकाम है, धीर है, अमृत है, स्वयंभू है, रस तृप्त है, और किसी तरह भी न्यून नहीं है, पूर्ण है।

यही प्राणियों को सब कुछ देता है, उनके लिए उपयोगी साधन और सामग्री का निर्माण करता है। प्राणियों को दान देने का कार्य जिनके माध्यम से किया जाता है उन्हें ही वेदों में देवता कहा गया है। इनके सूक्ष्म और स्थूल स्वरूप हैं। सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति व प्रलय इन्हीं के द्वारा होती रहती है। यही उस पूर्ण में से ले लेकर प्रत्येक अपूर्ण को भरते रहते हैं। इनकी इस कार्य प्रणाली को जान लेना ही वैदिक विज्ञान है।

उक्त देवगण उपभोग सामग्री और साधनों के साथ-साथ ज्ञान भी प्रदान करते हैं। ज्ञान भी उसी पूर्ण ज्ञान सागर से लाकर अपूर्णों में भरते हैं, इस ज्ञान भरने की प्रक्रिया को वैदिक वाग् विज्ञान कहते हैं। वाक् ही ज्ञान भरने का माध्यम है। इसी वाक् का व्यक्त या प्रकट रूप भाषा है। ज्ञान और भाषा दोनों ही देवी देन हैं। किसी भी मनुष्य में यह सामर्थ्य नहीं जो ज्ञान और भाषा बना सके।

'भाषा' शब्द संस्कृत की 'भाष्' धातु से जिसका अर्थ है 'व्याक्तयाम् वाचि' अर्थात् वाणी को व्यक्त करने के अर्थ में बनता है। चेतन प्राणीमात्र के अन्तःकरण में वाक् अर्थात् वाणी विद्यमान रहती है। यह वाक् प्राणियों की आंतरिक संवेदना और भावों को व्यक्त करने, अन्यों के समक्ष प्रकट करने का साधन होती है। प्राणियों के हर्ष शोकादि को व्यक्त करने और अन्यों को ज्ञान प्रदान करने के लिए जब वाक् प्रकट होती है तब उसे भाषा कहा जाता है।

वेदों में भाषा को सरस्वती कहा गया है। प्राणीमात्र की अपनी भाषा या बोली होती है, उसी से उनके भावों को और स्वयं उनको पहचाना जाता है। भिन्न-भिन्न प्राणियों की बोली भी भिन्न ही होती है। प्राणियों में मनुष्य भी है और उसकी भी बोली होती है परन्तु अन्य प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य की बोली की कुछ विशेषताएँ हैं, जो अन्य प्राणियों की बोली में नहीं होती। बोली ध्वनि के रूप में प्रकट होती है। यह

प्राणियों को प्राप्त बाह्य करण मुख, जिह्वा व प्राण के संयोग से उत्पन्न होती है। मनुष्य के मुख से निकली जिस ध्वनि को सुनकर सुनने वाला मनुष्य ज्यों का त्यों बोल दे उसे अक्षर ध्वनि, व्यक्त वाक् या शब्द कहते हैं। शब्द केवल मनुष्य ही बोलते हैं, अन्य प्राणी नहीं बोल सकते। शब्दों से पद बनते हैं और पदों को मिलाकर वाक्य बनते हैं, वाक्य ही भाषा है। मनुष्य वाक्यों के द्वारा ही अपना अभिप्राय प्रकट करते हैं। भाषा केवल मनुष्य ही बोलते हैं। मनुष्येतर प्राणी बोली बोलते हैं।

शब्द या अक्षर वह ध्वनि है जो नित्य, अविनाशी, स्थिर व्यक्त या स्पष्ट और अनुकरणीया होती है। उसे जैसा सुना जाता है वैसा ही अन्य के द्वारा बोला और दोहराया जा सकता है। कोई क्या कह रहा है, यह बताया जा सकता है। वैदिक लोग शब्द को नित्य और सार्थक कहते हैं। शब्द और अर्थ का नित्य सम्बन्ध होता है। अतः सार्थक ध्वनि खंडों से मिलकर बने पद समूह या वाक्य भाषा कहे जाते हैं। सार्थक शब्द राशि ही सरस्वती है और शब्द का अर्थ ही सरस्वती का दूध है जिसे पिए बिना मनुष्य का जीवन सार्थक या सफल नहीं हो सकता है। परन्तु मनुष्य जो भाषा बोलता है उसके वे शब्द, पद और वाक्य जो भाषा के उपादान हैं, मनुष्य को कहा से प्राप्त हुए ? यह भाषा से सम्बन्धित एक रहस्य है। इसको समझने का यत्न पर्याप्त समय से चल रहा है।

लोगों ने इस विषय में अनेक अटकलें लगा कर अनेक वाद खड़े किये परन्तु आज तक इस समस्या का समाधान नहीं कर सके। आखिर मनुष्य ने बोलना कैसे सीखा? मनुष्य जो कुछ बोलता है वह उसका अपना नहीं होता, किसी अन्य मनुष्य से सुनकर ग्रहण किया हुआ होता है। कोई भी मनुष्य ये नहीं कहता कि यह भाषा मैंने बनाई है। सब यही कहते हैं कि हमने अपने पूर्वजों से सुनकर सीखा है।

आधुनिक भाषा शास्त्री -

अब तक स्वयं को भाषा शास्त्री कहने वाले अथवा भाषा वैज्ञानिक होने का दम्भ करने वाले पाश्चात्य और उनके पद चिन्हों पर चलने वाले भारतीयों ने भाषा की उत्पत्ति पर जो कुछ भी लिखा है वह नितान्त मूर्खतापूर्ण है। इतने बचकाने ढंग से विचार किया गया है कि इनकी बुद्धियों पर तरस आता है। वस्तुतः इनमें

से भाषा वैज्ञानिक नहीं है। इनके लेखन में कोई मौलिकता या अन्वेषण की झलक भी दिखाई नहीं देती। हमारे देशी मल्लों का तो यह हाल है कि अपने पाश्चात्य गुरुओं की नकल मात्र की है निज का कुछ भी नहीं है। अनेक तो ऐसे हैं जो पाठ्य पुस्तकें लिखने का व्यवसाय करते हैं। इन्हें नकलचियों का नकलची कहना चाहिए। उक्त सब लोगों ने प्राचीन भारतीय मनीषा को अपमानित करने का दुस्साहस किया है, उसका उपहास किया है। हमारे वाकशास्त्रविद् स्फोटायन, औपमन्यव औदुम्बरायण, यास्क, कृष्ण द्वैपायन व्यास, व्यादी, पतंजलि और भर्तृहरि आदि के समक्ष कहीं नहीं ठहरते। हमारे पूर्वजों ने भाषा की उत्पत्ति का इतिहास अनवच्छिन्न रूप में निज ग्रंथों में सुरक्षित रखा है, वही विज्ञान सिद्ध सिद्धांत है।

भाषा सिद्धांत -

ज्ञान को भाषा ही धारण करती है और अन्यों तक पहुंचाती है। मनुष्य जन्म के साथ ही जिज्ञासामय होता है। उसकी ज्ञान की भूख-प्यास मिटाने का कार्य उसके माता-पितादि करते हैं। इसके लिए वे अपनी भाषा का ही आश्रय लेते हैं। बालकों की प्रारंभिक चार साल तक की आयु ही ऐसी होती है, जिसमें वे सार्थक शब्दों को सुनकर बोलना सीखते हैं। आरम्भ के चार वर्ष के भीतर ही बालकों का मानसिक विकास होता है और माता-पितादि से सुनकर वह पहले तुतली आवाज में और बाद में स्पष्ट उच्चारण करने लगता है, यही मातृभाषा है। बालकों के मस्तिष्क में एक वाक् केंद्र होता है जहाँ जिज्ञासा की अग्नि जलती रहती है। इस कारण बालक प्राप्त संसार का ठीक-ठीक परिचय पाने के लिए स्वाभाविक रूप से समुत्सुक रहते हैं। माता-पिता इस कार्य में उनकी सहायता करते हैं। प्रारम्भ में उसे शब्द, नाम और पद सिखाते हैं पुनः पदों को जोड़कर वाक्य सिखाते हैं। इस प्रकार बालक बोलना और जानना सीखते हैं।

यह सब कार्य बालकों के मस्तिष्क में स्थित श्रवण केंद्र में सार्थक शब्दों को सुनाकर किया जाता है। यदि श्रवण केंद्र विकृत है तो भाषा सीखाना सम्भव नहीं होता। मस्तिष्क में वागुच्चारण और श्रवण केंद्र संयुक्त ही होता है। जो सुन नहीं सकता वह बोल भी नहीं सकता। इसलिए संसार के सभी गूंगे, बहरे भी

होते हैं अथवा यों कह सकते हैं कि वे बहरे होने के कारण ही गूंगे होते हैं। अतः सिद्धांत यह हुआ कि भाषा बोलना सीखने के लिए सुनना अनिवार्य शर्त है। माता-पिता बालकों के नैसर्गिक रूप से प्राप्त वागुच्चारण और श्रवण केंद्रों का और स्वर यंत्रों का उपयोग मात्र करते हैं इन्हें बना नहीं सकते। इसी प्रकार जिस भाषा को वे बालकों को सिखाते हैं वह भी उनकी अपनी बनी नहीं होती। यह उसी की बनाई होती है जिसने वाग् और श्रवण केंद्र बनाए हैं। अतः यह मान्यता सर्वथा असत्य है कि भाषा मनुष्यों ने बनाई। मानवीय इतिहास इसकी साक्षी नहीं देता। इसकी पुष्टि में एक भी प्रमाण नहीं है।

भाषा की उत्पत्ति —

अब प्रश्न यह है कि मनुष्य को सर्वप्रथम भाषा कैसे मिली? जब सृष्टि की आदि में मनुष्य जन्मे, अपनी आँखें खोली तब कोई तो ऐसा होगा जिसने उन्हें सम्हाला होगा, पोषण प्रदान किया होगा, सुरक्षा प्रदान की होगी, आदि माता-पिता की भूमिका निभाई होगी। हमने पहले ही बता दिया है कि एक पूर्ण ज्ञानवती सर्वशक्ति सम्पन्न सत्ता है जहाँ से देवगण निकलता है और सृष्टि कार्य सम्पादित करता है। वही सत्ता आदि मानव की माता पिता की भूमिका निभाती है। वेदों में कहा गया है — **त्वम् हि नः पिता वसो त्वम् माता शतक्रतो बभूवथि। अधा ते सुम्नमीमहे।** अर्थात् — हे हमें बसाने वाले, आवास निर्माता और प्रदाता प्रभो! तुम ही हमारे माता-पिता हो। हम आपका सौमनस्य चाहते हैं।

भौतिक रूप में यही भूमिका द्यौ और पृथ्वी निभाते हैं। वेद के शब्दों में — **तत् पृथ्वी माता तत् पिता द्यौः।** वेद का मानव कहता है — **माता भूमिः पुत्रोऽहंपृथिव्याः** यह भूमि मेरी माता है मैं इस पृथ्वी का पुत्र हूँ। सृष्टि के मूल में रचना समर्थ विश्वकर्मा, पोषण समर्थ विश्व धाया और रक्षा समर्थ विश्ववारा शक्ति विद्यमान है। अपने दो देवताओं के द्वारा अर्थात् द्यौ और पृथ्वी के द्वारा ऋतुकाल पर गर्भाधान होकर, पोषण प्राप्त कर मनुष्यों का जन्म होता है। ये अमैथुनी सृष्टि संज्ञक या अयोनिज कहलाते हैं। देखिए प्रमाण —

तत्र शरीरं द्विविधम् योनिजम् अयोनिजम् च ॥

वैशेषिक .5—175

सन्त्ययोनिजा — अर्थात् प्रारम्भ में अयोनिज मनुष्य उत्पन्न होते हैं।

इन्हीं में से कुछ जान ग्रहण समर्थ मस्तिष्क वाले, उत्तम वागुच्चारण व श्रवण केंद्र वाले मनुष्यों में ही सर्वप्रथम देव लोग वाग् को उद्बुद्ध करते हैं।

इस कार्य में दो देवता नियुक्त होते हैं। एक बृहस्पति और दूसरा इंद्र। इन देवों द्वारा उच्चारित वाक् का साक्षात्कार करने में समर्थ जो उत्कृष्ट प्रज्ञा वाले मनुष्य थे उन्हें ऋषि कहा गया है यथा— **साक्षात् कृत धर्माणः ऋषयो बभूवुः। निरुक्त 1—20**

अर्थात् साक्षात्कृद्धर्मा ऋषि हुए। ऋषि से तात्पर्य — **ऋषयो मन्त्रदृष्टारः॥** अर्थात् मन्त्र दर्शन या विचार दर्शन समर्थ लोग ऋषि कहलाते हैं। यही साक्षात्कृत धर्मा ऋषि साक्षात् करण में असमर्थ जनों को मंत्र प्रदान करते हैं यथा — **तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृत धर्मभ्यः उपदेशेनमन्त्रान् सम्प्रादुः॥ निरुक्त॥**

अर्थात् उन्होंने अन्य सामर्थ्य हीनो को उपदेश के द्वारा मन्त्र प्रदान किए।

यहाँ एक ध्यान रखने योग्य तथ्य यह है कि यह भाषा मंत्रों के रूप में देवों द्वारा उद्बुद्ध होती है अतः इसे दिव्य वाक् या देव वाणी कहते हैं। कालांतर में इसी से मानवी वाक् और भाषा प्रचलित होती है। देववाणी कभी मानवी वाक् व्यवहार में नहीं आई। वैदिक लोग सदा से दो प्रकार की वाक् मानते आए हैं। एक दैवी वाक् और दूसरी मानुषी वाक्। यज्ञों में सदा दैवी वाक् का ही प्रयोग होता रहा है, मानवी का नहीं। दैवी वाक् मन्त्रमयी है। मन्त्र देवों द्वारा अंतरिक्ष में उच्चारित होते हैं।

बृहस्पति वह देवता है जिसे वाक् विभाग की रक्षा और उद्घाटन का दायित्व सौंपा गया है। सौंपने का कार्य सविता देवता करता है। सविता सर्वोपरि और मुख्य देवता है। वही सब देवों का उत्पादक और प्रेरक है। सभी देव सविता के ही आदेश पर कार्य करते हैं। वह बृहस्पति समष्टिमन अर्थात् महत् के सहयोग से वाक् को प्रेरित करता है तब इन्द्र नामक देवता जो कि देवों का यजमान होता है वह उस वाक् का उच्चारण करता है, इस प्रकार वाक् अंतरिक्ष में प्रकाशित होती है तब उस बात को ऋषि लोग स्वयं में विद्यमान बृहस्पति और इंद्र के साथ मन को जोड़कर सुनते हैं। सुनते ही उनका वागुच्चारण केंद्र उस वाक् का अनुकरण करके बोलने लगता है इस प्रकार वाक् उत्सृष्ट होकर वेद के रूप में आती है।

पश्चात् इसी दैवी वाक् में से शब्द और पद लेकर मानवी वाग्व्यवहार की भाषा बनाई गई है। उसी प्रारम्भिक शुद्ध निर्दुष्ट वाक् के कालांतर में अपभ्रंशीकरण के कारण संसार की समस्त भाषाएं बनी हैं। संसार आज अपभ्रंशों को ही भाषा कह कर काम चला रहा है। वेद कहते हैं –

**बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रयत् प्रैरत नामधेयम् दधाना।
श्रेष्ठं यदेषां यदरिप्रमासीत प्रेणातदेषां निहितं गुहा
विः॥ ऋग्वेद 10-7-1**

अर्थात् बृहस्पति की उस प्रथम वाक् का मूल जिससे सभी पदार्थों व प्राणियों का नामकरण हुआ है वह श्रेष्ठ और निर्दुष्ट थी। वह इन ऋषियों की बुद्धि में प्रकाशित हुई। और **दैवीम् वाचम् अजनयन्तदेवाः।** देव जन दिव्य वाक् को उत्पन्न करते हैं।

वागम्भृणी सूक्त में स्वयं वाक् द्वारा कहलाया गया है—
**तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्
॥ ऋ -10-125-3**

अर्थात् मुझ बहुत विस्तार वाली तीव्रता से प्रवेश समर्थ को देवों ने धारण किया। बृहस्पति के लिए कहा गया है कि – **‘उस्रा इव सूर्यो ज्योतिषा महो
विश्वेषामिज्जनिता ब्रह्मणामसि’ ऋ 2-23-2**

अर्थात् हे बृहस्पति जैसे सूर्य अपनी किरणों से अत्यंत प्रकाश करता है उसी प्रकार तुम वेद को प्रकाशित करते हो। उक्त बृहस्पति और इंद्र का भौतिक रूप आकाश और विद्युदावेष्टित वायु है।

वागुच्चारण में इन दोनों के साथ समष्टि मन और व्यष्टि मन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इनके बिना वाक् उत्सृष्ट नहीं हो सकती। यह दिव्य वाक् ऋषियों को बुद्धि में सुनाई पड़ती है क्योंकि सुनने की इच्छा और सुनना तथा ग्रहण करके धारण करने का गुण बुद्धि में ही होता है **यथा – सुश्रूषा श्रवण ज्ञैव ग्रहणं
धारणं तथा। ऊहापोहार्थं विज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धी
गुणाः॥**

इस प्रकार मानवीय बुद्धि में बृहस्पति और इन्द्र साथ मरुत आदि अन्य देवों के सहयोग से वाक्य प्रकाशित होती है और पृथ्वी पर उसका प्राकट्य होता है।

यह दिव्य वाक् नित्य होती है, अविनाशी और अक्षर होती है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमारी वर्णमाला है। वेदों में कुल 63 वर्णों का प्रयोग है। इन्हीं से समस्त वेद मंत्रों का स्वरूप बना है। अब तक भी संसार के

सारे मनुष्य इन्हीं वर्णों का उच्चारण करते हैं। किसी भी भाषा को देख लो, उसकी वर्णमाला कैसी भी हो उच्चारण वैदिक वर्णमाला का ही होता है। संसार की समस्त वर्णमालाएँ कृत्रिम हैं और अपूर्ण हैं। वैदिक वर्णमाला ही वास्तविक और नित्य है। कोई माई का लाल इससे भिन्न कोई उच्चारण करके बताए तो सही। वैदिक वर्णमाला की लिपि भी ऐसी है कि जो लिखा जाता है वही बोला भी जाता है। अन्य किसी वर्णमाला में यह बात नहीं है। अतः भाषा किसी मनुष्य ने नहीं बनाई वह दैवी देन है। अस्तु

‘अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा’॥

– वेदप्रिय शास्त्री

पुण्य

जिसका स्वरूप विद्यादि शुभ गुणों का दान और सत्यभाषणादि सत्याचार का करना है, उसको पुण्य कहते हैं।

पाप

जो पुण्य से उलटा और मिथ्या भाषण अर्थात् झूठ बोलना आदि कर्म है, उसको पाप कहते हैं।

– महर्षि दयानन्द सरस्वती

सभ्यताओं का धार्मिक और सांस्कृतिक इतिहास : इतिहासकारों- पुरातत्त्ववेत्ताओं की गवेषणा की सत्यता

— अखिलेश आर्येन्द्र

पिछले अंक में मानव सभ्यताओं और इतिहासकारों की सभ्यताओं के सम्बंध में सूक्ष्म और लघु विवेचना की थी। मानव सभ्यताओं का इतिहास वैदिक वांगमय में प्राप्त होता है। वेद में इतिहास नहीं है लेकिन अन्य वैदिक ग्रंथों में इतिहास पाया जाता है। वहीं दूसरी ओर विश्व इतिहासकारों ने सभ्यताओं के इतिहास का प्रारम्भ ईसाई पादरियों द्वारा लिखे इतिहास से माना है। सभ्यताओं के इतिहास में सत्य, तथ्य, साक्ष्यपारकता और गवेषणा पारकता का प्रतिशत कितना है, इसे जानना आवश्यक है। सामान्यता भारतीय सभ्यताओं—जिसमें आर्य, सिन्धु घाटी, हड़प्पा, मोहनजोदड़ों आदि सभ्यताएं सम्मिलित हैं के सम्बंध में जो इतिहास लिखा मिलता है, वह अनेक विसंगतियों से भरा पड़ा है। इन विसंगतियों की विवेचना कुछ भारतीय इतिहासकारों ने किया है, लेकिन उनकी मान्यता विश्व इतिहास में दिलाना आवश्यक है। स्कूल-कालेजों और विश्वविद्यालयों के इतिहास पाठ्यक्रमों में सभ्यताओं का जो इतिहास पढ़ाया जाता है, उसका लेखन पश्चिमी इतिहासकारों द्वारा किया गया है। राजनैतिक स्वतंत्रता के सत्तर वर्षों में पश्चिमी इतिहासकारों द्वारा लिखे इतिहास को पढ़कर भारतीय जनों में यह भ्रमित धारणा बलवती हो चुकी है कि हम भारतीय जन पिछड़े, अशिक्षित, असांस्कृतिक, अधार्मिक, असभ्य और अज्ञानी रहे हैं। हमारा कोई आदर्श धर्म, संस्कृति, सभ्यता, शिक्षा और साहित्य नहीं रहा है। धार्मिक रूप से हम पाखंडी, अंधविश्वासी, रूढ़िवादी और अज्ञानी रहे हैं। वेदादि ग्रंथों में कहानी-किस्से, इतिहास, भूत-प्रेत, टोना-टोटका आदि वर्णित हैं। इसी प्रकार भारत के मूल निवासी द्रविण है या शूद्र हैं, आर्य आक्रमणकारी थे जिन्होंने द्रविणों को परास्त करके यहाँ अधिकार कर लिया। इसी तरह सभ्यताओं के इतिहास लेखन को भी मनमाने ढंग से लिखा गया, जिसे भारतीय वामपंथी इतिहासकारों ने बिना किसी विवेचना या समीक्षा के स्वीकार कर लिया। इतिहास लेखन में ईसाई विदेशी पादरियों और विदेशी इतिहासकारों की प्रवृत्तियों, विचारों और गवेषणाओं को भारतीय गवेषकों और इतिहास समीक्षकों ने सूक्ष्म ढंग से समझने के कभी प्रयास नहीं किए। इसका परिणाम यह हुआ कि जो विदेशी इतिहासकारों ने लिख दिया उसे 'ब्रह्म-वाक्य' मानकर स्वीकार कर लिया गया। इतिहास पढ़कर हीनता का बोध जितना भारतीयों में पिछले सत्तर वर्षों में हुआ, उतना विश्व के किसी देश के लोगों में देखने-सुनने में नहीं आया। हमारी धार्मिक कूपमंडूपवादिता और पौराणिकता ने हमें हर स्तर पर पंगु बनाया। हीनता, दीनता और भीरुता, भारतीय जनों में आज भी जितनी है विश्व के किसी देश के लोगों में देखने-सुनने में नहीं आया।

वेदादि शास्त्रों के स्वाध्याय की हमारी परम्परा अत्यंत पुरानी रही है। लेकिन पौराणिकता के प्रचार-प्रसार के बाद यह परम्परा समाप्त होती गई। अंतरजाल (इंटरनेट) के आगमन के बाद तो पूरी तरह समाप्त हो गई है। इसे पुनः जाग्रत करना है। इससे प्रत्येक स्तर पर जागरूकता आएगी। इतिहास, साहित्य, धर्म, अध्यात्म, विज्ञान और दर्शन को समझने में भी आसानी होगी। इस अंक में विदेशी इतिहासकारों द्वारा लिखे गए सभ्यताओं के सांस्कृतिक और धार्मिक इतिहास के सम्बंध में विवेचनात्मक लेख प्रस्तुत किया जा रहा है। पाठकगण, इस अंक में वर्णित सभ्यताओं के धार्मिक और सांस्कृतिक इतिहास पर अपनी समीक्षात्मक दृष्टि दें। हमें अपनी प्रतिक्रिया से अवगत कराएंगे, ऐसी आशा है।

— समन्वय सम्पादक

सभ्यताओं का धार्मिक स्वरूप

पुरातत्त्ववेत्ताओं और इतिहासकारों ने जिन सभ्यताओं के सम्बंध में हमें जानकारी दी है, उनके नामों पर विचार करते समय वेद में वर्णन उनके 'वाचक' नामों पर विचार ही नहीं किया गया। इससे अनेक प्रकार के भ्रम,

विसंगतियां और बिडम्बनाएं उन्हें हुई। यदि वेद में आए शब्दों के मूलार्थ, भावार्थ आदि पर समीक्षात्मक, तर्कातात्मक और व्याकरणात्मक अर्थ पर विचार किया गया होता तो सभ्यताओं को समझने में उन्हें आसानी होती। वेद में वर्णित शब्दों को लेकर कल्पना, धारणा और मान्यता इतिहासकारों और पुरातत्त्ववेत्ताओं ने ऐसे मनमानी तरीके से किया कि सत्य और यथार्थ बहुत दूर छूट गए। इससे सभ्यताओं के धार्मिक और सांस्कृतिक स्वरूप को यथार्थ रूप में नहीं समझा जा सका। कल्पना, मान्यता और पूर्व धारणा को सभ्यताओं के इतिहास लेखन में आधार बनाया गया। जिससे इतिहास के यथार्थ और सत्य स्वरूप को नहीं समझा जा सका। सिन्धु, हड़प्पा और मोहनजोदड़ों सभ्यता के सम्बंध में आज तक जितनी भी वस्तुएं, खिलौने, विभिन्न प्रकार के वृक्षों की मूर्तियां और गृहस्थजीवन में काम आने वाली वस्तुएं प्राप्त हुई हैं, उनके सम्बंध में विदेशी और वामपंथी पुरातत्त्ववेत्ताओं और इतिहासकारों ने मनगढ़न्त इतिहास गढ़ा। भारतीय और विदेशी इतिहासकारों और पुरातत्त्ववेत्ताओं ने सभ्यताओं के धार्मिक स्वरूप का जिस तरह वर्णन किया है, वह कल्पना, मान्यता और अनुमान पर आधारित है। उदाहरण के तौर पर सिन्धुघाटी और मोहनजोदड़ों सभ्यता में इतिहासकार कहते हैं कि इन सभ्यताओं में मंदिर होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता है, लेकिन कुछ विद्वानों ने भवनों को ही मंदिर मान लिया। इसी तरह कल्पना, मान्यता और अनुमान के आधार पर पुरातत्त्ववेत्ता और इतिहासकार धार्मिक और सांस्कृतिक स्वरूप को निरूपित करते दिखाई पड़ते हैं। इसी तरह मेसोपोटामिया और सैंधव सभ्यता में मिली मृण्मूर्तियों की तुलना हड़प्पा, सिन्धु और मोहनजोदड़ों सभ्यताओं में मिली मृण्मूर्तियों से अनुमान के आधार पर की है। मृण्मूर्तियों को अनुमान के आधार पर मातृदेवी की मूर्तियां मानना और इसके आधार पर कहना कि उक्त सभ्यताओं में मूर्तिपूजा प्रचलित थी, एक हाइपोथिसिस के अलावा क्या है! इतना ही नहीं, इसी के आधार पर सभ्यताओं से जुड़े लोगों के सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक स्वरूपों के सम्बंध में प्रमाण के रूप में देना कहां तक उचित है? हड़प्पा और मोहनजोदड़ों सभ्यताओं में जो मिट्टी की मूर्तियां उत्खनन के समय मिलीं वे प्रकृति, योग और कला से सम्बंधित हैं। पुरातत्त्ववेत्ताओं ने इनके आधार पर धार्मिक मान्यताओं और

देवी-देवताओं पर लोगों के विश्वास से जोड़कर देखा है। और यह दावा किया कि भारतीय उपमहाद्वीप से सम्बंधित सभ्यताओं में निवास करने वाले लोग मूर्ति पूजा करते थे यानी मूर्तिपूजा का प्रचलन हजारों वर्ष पूर्व हो चुका था। लेकिन कुछ पुरातत्त्ववेत्ता मृण्मूर्तियों को प्रकृति-माता की मूर्ति कहते हैं। ऐसे में यह कैसे माना जा सकता है कि सभ्यताओं में मूर्तिपूजा का प्रचलन बड़े पैमाने पर था?

पुरातत्त्ववेत्ताओं के अनुमान और कल्पना का एक मजेदार उदाहरण और देखिए। पुरातत्त्ववेत्ताओं के अनुसार मोहनजोदड़ों, हड़प्पा और सिन्धुघाटी सभ्यताओं में उत्खनन के दौरान स्त्री के ऊपर पीपल की पत्तियों वाली मूर्तियां मिली हैं। इसी तरह एक चित्र में स्त्री के पेट से एक पौधा निकलता हुआ दिखाया गया है। पुरातत्त्ववेत्ता कहते हैं कि उक्त चित्र से यह ज्ञात होता है कि शक्ति पूजा और देवी पूजा का प्रचलन लगभग सभी सभ्यताओं में था। प्रकृति-पूजा के प्रचलन के सम्बंध में पुरातत्त्ववेत्ताओं के अनुमान और मान्यता को धर्म के स्वरूप के रूप में बताना कहां तक उचित है, जबकि अनुमान और मान्यता को प्रमाण के रूप में स्थापित करना-इतिहास या पुरातत्त्व विषय के सिद्धांत से मेल नहीं खाता है। पुरातत्त्व शास्त्री कहते हैं-लगतता है पालथी मारकर बैठी स्त्री और उसके दोनों ओर बैठे पुजारी वाली मुद्रा से लगतता है, इसी से शक्तिपूजा, मातृपूजा और देवीपूजा का प्रचलन यहाँ से हुआ! इतना ही नहीं, इससे ही शक्ति-उपासना, देवी-उपासना और मातृ-उपासना के प्रचलन की भी बात इतिहासकार कहते हैं। ध्यान रहे, पुरातत्त्व शास्त्री यह साबित करना चाहते हैं कि हिंदुओं में मूर्तिपूजा का प्रचलन दो-चार हजार वर्षों से नहीं हुआ है, बल्कि बहुत पहले से रहा है। कहने का भाव यह है कि धार्मिक स्वरूप का जो वर्णन अनेक आर्य सभ्यताओं में देशी-विदेशी पुरातत्त्व शास्त्री करते हैं, वे पिछले दो हजार वर्ष की पौराणिक मान्यता, धारणा और विश्वास के आधार पर करते हैं।

पुरातत्त्व शास्त्री सभ्यताओं में मिले अवशेषों, मृण्मूर्तियों, खिलौनों और चित्रों के आधार पर उक्त सभ्यताओं (मोहनजोदड़ों, सिन्धुघाटी और हड़प्पा) के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, कला-कौशल आदि के सम्बंध में तथ्यपरक विवेचना करते दिखाई देते हैं, जो किसी भी दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता है।

पुरातत्त्व शास्त्री जिस अनुमान और गवेषणा के आधार पर अपने दावे करते हैं, वे तर्क संगत और बुद्धि सम्मत नहीं लगते। उदाहरण के तौर पर पुरातत्त्ववेत्ता सिन्धुघाटी सभ्यता में शिव की पूजा का प्रचलन का दावा शिव की त्रिमुखाकृति मूर्तियों के आधार पर करते हैं। लेकिन वे यह भूल जाते हैं कि मूर्तियों के मिलने मात्र से समाज में उसी तरह के धार्मिक विश्वास के सम्बंध में अनुमान तो लगाया जा सकता है लेकिन उन्हें सभ्यताओं के धार्मिक व सांस्कृतिक स्वरूप के रूप में स्थापित नहीं किया जा सकता है। दूसरी बात यह है कि भारतीय उपासना-पद्धतियां अनगिनत रूपों में तब प्रचलन में आईं जब वेदों का प्रचार-प्रसार और व्यवहार समाप्त हो गया था और पौराणिक उपासना-पद्धतियां और धार्मिक कर्मकाण्ड प्रचलन में आने लगे थे। मूर्ति, शिल्प, चित्र आदि कलाएं हैं। इनका मूर्तिपूजा या धर्म से कोई सम्बंध नहीं है। इस ओर किसी पुरातत्त्व शास्त्री ने विचार तक नहीं किया, इन्हें सीधे मूर्तिपूजा और धर्म से जोड़ दिया गया जो उचित व तर्कसंगत नहीं लगता है।

भारतीय इतिहास के पुरातत्त्व विषय में अभी तक जो भी गवेषणा, विवेचना या लेख हम पढ़ते आए हैं वे लगभग विदेशी इतिहासकारों और पुरातत्त्व शास्त्रियों के हैं। कुछ वामपंथी इतिहासकारों और पुरातत्त्व शास्त्रियों के पुरातत्त्व सम्बंधी कार्य और निष्कर्ष को भी हम यत्र-तत्र पढ़ते हैं। जिन पर विदेशी पुरातत्त्व शास्त्रियों का स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है। स्पष्ट है विदेशी इतिहासकार और पुरातत्त्व शास्त्री भारत की संस्कृति, सभ्यता, धर्म और समाज के सम्बंध में वर्णन करते समय कभी निष्पक्षता और सत्यता की दृष्टि नहीं अपनाते—कुछ इतिहासकारों और पुरातत्त्व शास्त्रियों को छोड़कर। ऐसे में लिखे गए इतिहास के साथ निष्पक्ष निष्कर्ष कैसे निकाला जा सकता है?

सभ्यताओं के सांस्कृतिक स्वरूप की वास्तविकता

सिन्धु, मोहनजोदड़ों, हड़प्पा आदि सभ्यताओं के सांस्कृतिक स्वरूप के सम्बंध में उसी प्रकार के अनुमान और कल्पना की सहायता ली गई है जैसे धर्म के सम्बंध में। जिस प्रकार से धर्म के स्वरूप, उपासना-पद्धति में 'शायद' 'अनुमान है' 'लगता है' जैसे संशय-युक्त शब्दों का प्रयोग पग-पग पर किया है, उसी प्रकार से संस्कृति के सम्बंध में भी किया गया है। जिस वेद में

कहानी-किस्से और घटनाओं का कोई संकेत नहीं है, उस वेद में यदि इतिहासकार और पुरातत्त्व शास्त्री इतिहास, कहानी-किस्से ढूंढते हैं तो उनके कथित वेद-ज्ञान पर आश्चर्य होता है। सभ्यताओं के विषय में भी यही बात देखने को मिलती है। सभ्यताओं का सारा इतिहास यदि 'अनुमान' 'शायद' और 'हो सकता है' के आधार पर ही आधारित है तो हम कैसे किसी भी पक्ष पर प्रमाण सहित किसी बात को समझ सकते हैं? किसी भी सभ्यता के सांस्कृतिक स्वरूप को हम उस सभ्यता के निवासियों के बौद्धिक प्रगति से माप सकते हैं। इसके बावजूद भी जो कुछ पुरातात्विक इतिहास में प्राप्त होता है, वह एक आदर्श सभ्यता के सांस्कृतिक पक्ष को ही संकेत करता है।

भारतीय पुरातात्विक इतिहास जो भारत में पढ़ाया जाता है, वह विदेशी पुरातत्त्व शास्त्रियों कर्नल स्यूयल, मैके, जॉन मार्शल, गार्डन चाइल्ड, डॉ. ए. रीड आदि का पढ़ाया जाता है। और जैसा कि मैं पहले बता चुका हूँ कि विदेशी इतिहासकार और पुरातत्त्व शास्त्री भारतीय सभ्यता, संस्कृति, धर्म का वर्णन करते समय कुछ विशेष मान्यताओं, पूर्व धारणाओं, पूर्वाग्रहों और अनुमानों का सहारा लेते हैं। इसके अतिरिक्त वे यह सिद्ध करना नहीं भूलते कि भारतीय उपमहाद्वीप की विकसित सभ्यताओं से अधिक विकसित मेसोपोटामिया और बेबीलोन की सभ्यताएं थीं।

पुरातात्विक वस्तुओं के माध्यम से जो भी अनुमान लगाया जाता है वह प्रमाण, तथ्य और सत्य के धरातल पर कितना वास्तविक है, कहना मुश्किल है। इसलिए सभ्यताओं का जो इतिहास पढ़ाया जाता है, उसमें कई तरह से संदेह, भ्रम और अवास्तविकता की गुंजाइस अधिक होती है। जैसे— सिन्धुघाटी सभ्यता के सम्बंध में लिखा मिलता है कि इस सभ्यता से सम्बंधित निवासियों का प्रिय कार्य मछली पकड़ना और शिकार करना था। लोग कांटे की सहायता से मछली मारते थे। अब इस वाक्य का विश्लेषण करें कि यह कैसे निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि सिन्धुघाटी सभ्यता से सम्बंधित लोगों का सबसे प्रिय कार्य मछली पकड़ना और पशुओं का शिकार करना था? यह कैसे दावा किया जा सकता है कि मांस काटने के लिए पत्थर के औजार बनाए जाते

थे? वहीं दूसरी ओर कहा जा रहा है कि इन सभ्यताओं के निवासियों का मुख्य कार्य कृषि करना था।

पुरातत्वात्त्विक खोजों के दौरान रोजमर्रा की वस्तुएं, वाद्य यंत्र, खिलौने, मूर्तियों आदि के माध्यम से सभ्यताओं का इतिहास गढ़ना और उस इतिहास को प्रमाण और तथ्य के रूप में प्रस्तुत करना इतिहास के साथ क्या न्याय कहा जाएगा? पेशेगत जातियों के बटवारे की चर्चा इतिहास में की गई है। सैंधव सभ्यता को मातृ प्रधान बताया गया है। इसे द्रविण और प्राक्-आर्य में विभाजन करके दोनों की तुलना की गई है। प्रश्न यह है कि द्रविण और प्राक्-आर्य का विभाजन किस आधार पर किया गया है? समाज में जातिगत विभाजन जन्मगत था या कर्मगत, इसे किस आधार पर खोजा गया? क्योंकि जन्मगत जातिगत विभाजन और उनका नामकरण कब हुआ, यह प्रमाणित करना अत्यंत कठिन है। यदि तथाकथित द्रविण और तथाकथित प्राक्-आर्य में लगभग हर स्तर पर समानता है तो इनका अलग विभाजन का क्या मतलब? इस लिए पुरातात्त्विक उत्खनन में मिली वस्तुओं के आधार पर कोई इतिहास स्थापित करना, सभ्यताओं के साथ अन्याय करने के समान है। हड़प्पा सभ्यता के

आहार-विहार की चर्चा पुरातत्त्व शास्त्री किस आधार पर करते हैं? कर्नल स्यूयल के अनुसार हड़प्पा सभ्यता के लोगों का मुख्य भोजन मांस-मछली था, वहीं पर दूसरी ओर कहते हैं कि चावल, दाल गेंहूं आदि की पैदावार खूब होती थी। अब प्रश्न यह है कि जब अनाज, दूध, सब्जी, मेवे और फल सामान्य रूप से खाने के लिए सबको उपलब्ध थे तो मांस-मछली का भोजन मुख्यतः लोगों का क्यों था?

ऐसा लगता है, विदेशी पुरातत्त्व शास्त्रियों और वामपंथी पुरातत्त्व शास्त्रियों ने मनमाने तरीके से पुरातात्त्विक इतिहास लिखा। यदि अनुमान भी लगाया जाता है तो उसके पीछे तर्क, तथ्य और उसका कारण तो ऐसा होना चाहिए, जो अनुमान को तर्कसंगत सिद्ध करे। जिस प्रकार से तथाकथित द्रविणों और तथाकथित आर्यों का भोजन मांसाहार बताया गया उसी तरह उत्खनन के सारे प्रमाणों को नजरअंदाज करते हुए सभ्यताओं के इतिहास के विविध पक्षों को मनमानी तरीके से प्रस्तुत किया गया। पाठकगण! श्रृंखला का यह लेख कैसा लगा, विधिवत स्वाध्याय करके अपने पत्र द्वारा अवश्य अवगत कराएं। शेष अगले अंक में।

शुभ विचार जीवन, समाज और प्रकृति को सर्वोत्तम बनाते हैं

प्रकृति में अमृत भी है और विष भी है। गंदगी भी है पवित्रता भी है। शुभ भी है और अशुभ भी है। सुख भी है और दुख भी है। जीवन भी है और मरण भी है। शांति भी है अशांति भी है। संतोष और असंतोष दोनों हैं। सफलता है तो असफलता भी है। इनमें से आप सकारात्मक धारा की चीजों को चुनते हैं कि नकारात्मक धारा की चीजों को। चुनाव आपको करना है। इस चुनाव पर ही निर्धारित होगा कि आप किस दिशा में जाना चाहते हैं। जिस दिशा को चुनते हैं, उसी के अनुसार आपको परिणाम भी मिलेगा। मानव का संकल्प और उसकी दिशा ही उसके जीवन की सफलता और असफलता को निर्धारित करते हैं। यदि संकल्प पर दृढ़ नहीं रह पाए और प्रगति की दिशा का चुनाव ठीक नहीं हुआ तो लक्ष्य प्राप्त करना बहुत मुश्किल हो जाता है।

BRAHMIN-KSHATRIYAS: GOOD AND BAD

– Dr. Roop Chandra ‘Deepak’
Lucknow (U.P.)
Mob. 9839181690

Teachers are a highly respected class all the world over. They turn the animal into the man. They teach us how to pronounce a letter, how to write a word and how to make a sentence. They receive a child who is three or four years old and turn him into a doctor, engineer, writer, sportsman, politician, businessman or the like. Our culture gives the preceptor that high respect which is given to parents only.

Our ancient teachers were learned in Vedas and Vedic scriptures. They taught us vedas & upanishads, science & religion, economics & warfare. Their economics was so high that the nation came to be known by the name ‘sone ki chidiya’ or the Golden Bird. Their religion was so deep that thousands of people used to discipline themselves for realisation of God.

Mentioned above was the position of good Brahmins in ancient India. But somehow sometime the teachers began to teach that God is visible to eyes and he can take shapes of human beings. They started teaching anti-Vedic principles and unscientific theories. Today there are graduates who cannot pronounce even the alphabets correctly. The girl students

hesitate in taking tuitions from male teachers. There are scams in examinations. There are teachers who smoke and drink. Such are the examples of bad Brahmins.

The saints, sannyasins, yajna-performers, writers, scientists, doctors and engineers are also counted in the Brahmin-Varna. There was time when India was better known for its spiritual saints. They used to lead a life of self-restraint. God's worship and social reforms. Such saints and sannyasins exist even today. There are monasteries and huts where good saints and sannyasins live a chaste life. But there are so-called saints as well, who engage themselves in party politics, patronise men of mussle, travel in trains without ticket, eat flesh, drink and smoke. These are the examples of bad Brahmins.

Performing yajna is a pious act both spiritually and environmentally. But there are priests who perform it just to earn dakshina (fee in lieu of performance). Similarly, Jyotish is a science enabling us to exactly learn the moments, hours, days, months, years and centuries. It comprises the knowledge of seasons, winds and rains as well. The mathematical

part of Jyotish is correct and useful for all mankind. But astrology, palmistry and numerology are not true sciences. The cunning pandits discuss these non-sciences in public, make the people confused and afraid, and this way earn easy money. These are other examples of good and bad Brahmins.

We can seek even more examples of good and bad Brahmins. Our ancient writers and poets have composed Sankhya, Nyaya, Vaisheshika, Yog, Mimansa and Vedanta shastras. The Manusmrati, Upanishads, Ramayana, Mahabharata etc. are also the golden pieces of their creativity. On the contrary, we find anti-God novels, superstitious books and lusty songs today, misleading people and ruining the youths.

In earlier times there were great Vaidyas like Charak and Sushruta. Even today there are thousands of good doctors serving humanity their heart and soul. But there are doctors too who work for money only. The same thing holds good for engineers. There are good and very good engineers, as well as bad and very bad ones.

The Kshatriyas today include the Defence forces, the Police force, the security officers and government employees. In our history, there have been Commanders like Chandragupta Maurya, Samudragupta, Shivaji, Maharana Pratap and Rani Lakshmi Bai. In the same history, there have been

dozens of rulers who ruled for their own and not for the nation. Had there not been bad Kshatriyas, India would have not lost her sovereignty to foreign powers.

The Police force has a toughest kind of job to perform. A government report says that the Indian Police is in 1990 what the British Police was in 1890 and the American Police in 1790. Indian Police comprises the honest and brave cops who always keep their duty above their life and families. It also comprises the cops who make friends with the miscreants, misbehave with innocent people and earn easy money from trucks & vehicles. The security officers, too, have a police-like duty. They stake their life for normal and special duties. Indian security officers have in general a good reputation. But cases have been found out when the security officers made collusion with the thieves, robbers or murderers.

Pt. Ganga Prasad Upadhyaya says as a footnote in the Light of Truth that "Varna is neither the much maligned caste of the prevalent Hinduism, nor the so called trade guild of the modern West. It is a basis for spiritual development of the individuals as well as the harmonious up-keep of social organism".

Good Brahmins are necessary for true knowledge and righteous conduct. Good Kshatriyas are necessary for secured life and good government. A bad Brahmin or Kshatriya harms the society beyond measure. So, all the varnas in general and these two in particular should be good and good only.

नयी गुलामी का सातवाँ दशक : भारतीय समाज और राजनीति के आड़ने में - डॉ. सीतेश आलोक

अंग्रेजों के ब्रिटन वापस जाने और भारतीय राजनेताओं को शासन चलाते सात दशक व्यतीत हो चुके हैं। इन सात दशकों में भारतीय समाज, संस्कृति, भाषा, शिक्षा, स्वास्थ्य और मानवीय मूल्यों का विकास और क्षरण कितना हुआ है, इस पर, आमतौर पर हम संवाद और चिंतन बहुत कम करते हैं। यही कारण है कि हम नयी गुलामी को आजादी और विकास समझने और मानने लगे हैं। स्वार्थपरता, अज्ञानता, संवेदनहीनता और मूर्खताओं के कारण हम अंधकार, पाखंड और अंधविश्वास को ही विकास और उन्नति समझ बैठे हैं। समाज की धारा और देश की धारा की दिशा का कोई पता ही नहीं। विदेशी सभ्यता, संस्कृति, आहार-विहार, ज्ञान-विज्ञान, राजनीति, धर्म और कलाओं का अंधानुकरण को विकास का आधार मान लिया गया है। जिसका परिणाम यह हुआ है कि 'स्व' का आत्मगौरव और आत्माभिमान ही समाप्त हो गया है। गई पीढ़ी को सही दिशा देने की जो संस्थाएं कभी किया करती थीं, उनके संचालक और पदाधिकारी लोग, आपस के मन-मुटाव, स्वार्थ और पद-लोलुपता के शिकार हो गए हैं। चारों वैदिक आश्रमों और पुरुषार्थों की महत्ता समाप्त होती जा रही है। ऐसे में भारतीय समाज और देश के कल्याण को लेकर चिंतित होना लाजामी है। समाज और देश सम्बंधी समस्याओं, संकटों और विसंगतियों का अम्बार लग गया है। इन्हीं तमाम बिंदुओं का सटीक विश्लेषण करता हिंदी के महान् साहित्यकार, चिंतक और सम्पादक डॉ. सीतेश आलोक का यह क्रांतिकारी लेख। पाठकगण, लेख आदि से अंत तक पढ़े, बताएं, आप का चिंतन इस बाबत क्या कहता है?

- समन्वय सम्पादक

हर वर्ष की भांति इस वर्ष भी 15 अगस्त को स्वतंत्रता दिवस मनाया जाएगा। लाल किले पर प्रधानमंत्री तिरंगा झंडा फहराएंगे और भाषण देंगे। आकाश में तिरंगे गुब्बारे उड़ाए जाएंगे। कुछ बड़े दफ्तरों और विद्यालयों में भी ध्वजारोहण की रस्म होगी। कहीं-कहीं मिठाई बाँटी जाएगी। चौराहों पर कुछ भिखारी छोटे-छोटे झंडे बेचकर भीख माँगते दिखाई देंगे। और..... उस दिन छुट्टी रहेगी।

छुट्टी का वह दिन लोग अपने-अपने ढंग से बिताएँगे। टी.वी के लगभग सभी चैनल एक या दो फिल्म दिखाएँगे। पहले कई वर्ष तक, जब दूरदर्शन पर सरकार का एकल राज था, स्वतंत्रता दिवस के दिन कोई शहीदों का स्मरण कराने वाली राष्ट्रीय भावना वाली फिल्म दिखाई जाती थी। लेकिन अब जब कि आजादी के बाद की तीसरी पीढ़ी जवान हो रही है, निजी टी.वी चैनलों की बाढ़ आ चुकी है और उनकी आपसी होड़ उनके कार्यक्रम का आधार बन चुकी है, जनता की पसन्द को ध्यान में रखते हुए उन पर ऐसी

चालू फिल्में ही दिखाई जाती हैं जो अच्छा 'बिज़नेस' कर सकें—उनकी टी.आर.पी. बढ़ा सकें।

पिछले लगभग सात दशकों में स्वतंत्रता के प्रति दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन हुआ है। आज आप नयी पीढ़ी के किसी भी प्रतिनिधि से पूछकर देखिए कि देश की स्वतंत्रता का क्या अर्थ है तो क्या पता कुछ लोग यह कहते मिल जाएँ कि आज हम जो चाहें वह करने के लिए स्वतंत्र हैं—और कुछ लोग मन-ही-मन यह भी सोच बैठें कि हड़ताल करने के लिए, लूटपाट करने के लिए, जमाखोरी और मिलावट के लिए भी, मनचाहा खाने-पीने और मनचाहा पहनने के लिए भी और शायद कहीं आगजनी या बलात्कार के लिए भी।

आज आपको कम ही लोग मिलेंगे जो देश की आजादी को आत्म-सम्मान से और राष्ट्रीय स्वाभिमान से जोड़कर देखते हों। यह देश का दुर्भाग्य है.....और इस दुर्भाग्य की नींव स्वतंत्रता प्राप्त होने के साथ ही पड़ गई थी। जब 1947 में देश की स्वतंत्रता का 'उत्सव' मनाया जा रहा था उस समय अनेकानेक

देशवासी इस शोक में डूबे हुए थे कि आजादी उन्हें देश विभाजन—स्वरूप एक बहुत बड़ी कीमत चुकाकर मिली थी। देश का 23—24 प्रतिशत भाग भारत—भूमि से कटकर अलग हो गया था। अधिकांश तत्काल मुसलमान नेता, जो भारतीय होने का दम भरते थे और हिन्दुओं से कंधे—से—कंधा मिलकर अंग्रेजों के विरुद्ध खड़े होते थे, आजादी की भनक पड़ते ही मुसलमानों के नाम पर अलग जमीन की माँग पर अड़ गए। उनके अंतर्मन में मात्र यह मलाल था कि अंग्रेजों के आने से पहले वे हिन्दुस्तान के शासक थे और अंग्रेजों ने उनसे हिन्दुस्तान छीना था। इसलिए जब अंग्रेज वापस जा रहे हैं तो देश का राज उन्हें वापस मिलना चाहिए। किन्तु वे यह भी जानते थे कि इस बीच सांलभर में व्यवस्था बदल गई है। प्रजातांत्रिक प्रणाली का युग आ गया है। इस बदले परिदृश्य में, उन्हें डर था कि देश पर बहुसंख्यक हिन्दुओं का शासन हो जाएगा—उन हिन्दुओं का, जो सदियों तक उनके गुलाम थे।

मुसलमानों के इस अड़ियल रुख का कहीं कोई तोड़ नहीं निकला। देश विभाजित हुआ और इस दुर्भाग्य के साथ ही अनेक दुर्भाग्य जुड़ते चले गए।

तब गाँधी देश के जाने—माने, वयोवृद्ध नेता थे। और संयोग यह था कि उनके मन में पण्डित नेहरू के लिए विशेष अनुराग था। देश के अधिकांश नेता, देश की बागडोर सम्हालने के लिए नेतृत्व सरदार बल्लभ भाई पटेल को देने के पक्ष में थे किन्तु गाँधी के व्यक्तिगत अनुरोध के कारण पटेल स्वयं ही पीछे हट गए।

फिर दुर्भाग्य यह कि नेहरूजी का लालन—पालन एक अत्यंत अमीर घराने में हुआ था और उनकी शिक्षा—दीक्षा, अंग्रेजों के बीच, अंग्रेजों के देश इंग्लैंड में हुई थी। भारतीय संस्कृति का उनका ज्ञान बहुत ही सतही था—मूलरूप से वही सब, जो उन्होंने अंग्रेजों द्वारा लिखी किताबों से पाया था। उन्होंने अपने विषय में स्वयं ही कहा था कि मैं शिक्षा से ईसाई, संस्कारों से मुसलमान और मात्र संयोग से हिन्दू हूँ। उनके लिए देश की आजादी का अर्थ बस यही था कि भारत में भरतीयों का राज हो और देश का आर्थिक विकास हो। लोगों का जीवन—स्तर अंग्रेजों जैसा हो...उनकी जीवन—शैली अंग्रेजों—जैसी हो जाए—वैसी ही, जैसी कि वे विलायत में देखकर आए थे।

देश का दुर्भाग्य यह भी कि उन्होंने अपने ही हम—ख़्याल डॉ. अम्बेडकर को भारतीय संविधान के रचनाकारों की समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया। डॉ. अम्बेडकर भी बड़े अरमान के बाद जैसे—तैसे इंग्लैंड से पढ़कर आए थे और वहाँ के रहन—सहन से बहुत प्रभावित होकर लौटे थे। फलस्वरूप जो लम्बा—चौड़ा संविधान बनकर तैयार हुआ, वह मूलरूप से अंग्रेजों के संविधान की ही प्रतिच्छाया था। पिछले सात दशकों में हम उसमें सौ से अधिक संशोधन कर चुके हैं किन्तु अभी उसमें शायद और भी दो सौ संशोधन की आवश्यकता है।

नेहरूजी ने अपने पूर्वाग्रहों के कारण कुछ ऐसे आधारभूत निर्णय लिए जो देश को दुर्भाग्य के दलदल की ओर ढेलते चले गए। उनमें से एक था कश्मीर में आक्रमणकारियों के साथ युद्ध—विराम। सुना जाता है कि सरदार पटेल इस निर्णय के बिल्कुल विरुद्ध थे और नेहरूजी की इस घोषणा के बाद उन्होंने कहा था— “नेहरू रोएगा...।” सरदार पटेल की भविष्यवाणी यदि ग़लत थी तो बस इतनी की शायद नेहरू स्वयं तो नहीं रोए, किन्तु सारा देश तब से निरन्तर रो रहा है...और जाने कब तक रोएगा!

नेहरूजी की व्यक्तिगत मानसिकता के कारण ही देश को अपनी ‘एक भाषा’ नहीं मिल पाई। प्रारम्भ में हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए 51 प्रतिशत बहुमत प्राप्त था किन्तु नेहरूजी ने कहा कि अभी हिन्दी को पूरी तरह विकसित होने के लिए समय चाहिए। तब पन्द्रह वर्ष के लिए राष्ट्रभाषा का मुद्दा टाल दिया गया, यह कहकर कि इस बीच हिन्दी का इतना विकास किया जाएगा कि देश के अहिन्दी भाषी क्षेत्र भी उसे स्वयं ही अपना लें। किन्तु पन्द्रह वर्ष बाद जब तत्कालीन गृहमंत्री पंडित गोविंद बल्लभ पंत राष्ट्रभाषा सम्बंधी फ़ाइल लेकर नेहरूजी के पास गये तो नेहरूजी ने क्रोध में वह फ़ाइल फेंक दी। सुना जाता है कि इस घटना के बाद ही पंडित पंत को पक्षाघात का दौरा पड़ा जिससे वे कभी उबर नहीं पाये।

पण्डित नेहरू के प्रभुत्व के ही कारण देश का नाम इंडिया पड़ा, जिसने अनजाने ही देश की जनता को भारतीय आत्म—सम्मान से वंचित किया, वैसे ही जैसे राष्ट्रीय भाषा के अभाव ने किया। इस सब के पीछे उनके मन में कुछ सीमा तक इंग्लैंड की चमक थी तो

कुछ मुसलमानों के प्रति उनका रुझान—वही जो उनके संरक्षक गाँधी जी को भी था। सम्भवतः, सम्भवतः देश के विभाजन से पूर्व मुसलमानों से बारम्बार यह कहते—कहते, कि स्वतंत्र भारत में उन्हें हिन्दुओं के बराबर ही सम्मानजनक अधिकार मिलेगा, उनके मन में यह भावना घर कर गई कि उन्हें मुसलमानों के प्रति विशेष ध्यान देते रहना चाहिए.....कि कहीं कोई भूल से भी यह न कह दे कि पहले किए हुए तुम्हारे सभी वादे खोखले थे। मुसलमानों के प्रति उनकी इस अतिरिक्त सहानुभूति ने, स्वयं मुसलमानों के मन में भी एक विशेष अपेक्षा उत्पन्न की। मुसलमान समाज इस मनोभावना को भुनाते रहने का अभ्यस्त होकर देश का एक विशेष वर्ग बनता चला गया और कालान्तर में धीरे—धीरे अन्य सभी राजनीतिक दल भी मुसलमानों की अलग पहचान को भुनाने के प्रयास में लग गए। देखते ही देखते, आज देश का मुसलमान एक सशक्त वोट—बैंक बनकर देश को नाकों चने चबाने के लिए विवश कर रहा है।

तर्क संगत तो बस यह था कि, यदि देश का विभाजन होना ही था, जहाँ मुसलमानों के लिए अलग देश बन रहा था तो वहीं सारे मुसलमान चले जाते और शेष भूमि पर 90—95 प्रतिशत हिन्दुओं का राज्य स्थापित होता। देश के तत्कालीन नेतागण सहज ही ऐसे नियम और ऐसा संविधान बना सकते थे जिससे देश में जैन, सिख, बौद्ध, ईसाई, पारसी आदि 'तथाकथित' अहिन्दुओं को सम्मानजनक स्थान प्राप्त रहे। ऐसी व्यवस्था पूरी तरह सम्भव थी, विशेषकर उस नेतृत्व के लिए जो इनसे इतर 15 प्रतिशत मुसलमानों को साथ लेकर भी 'सेकुलर' व्यवस्था बनाने का प्रयास कर रहा है।

किन्तु नये भारत में जन्मी व्यवस्था ने मुसलमानों के सोच को एक विशेष आक्रामकता प्रदान की। वे बात—बात पर यह मुद्दा उठाने लगे कि मुसलमान होने के कारण ही उनके साथ अन्याय हो रहा है। कभी कोई मुसलमान असामाजिक कार्य करता पकड़ा जाए तो वह यही कहता है कि उस पर मात्र इसलिए दोष लगाया जा रहा है कि वह 'बेचारा' मुसलमान है। आज किसी आतंकवादी को पकड़ा जाए तो सारे मुसलमान लामबद्ध होकर एक सुर में चिल्लाने लगते हैं कि वह बेचारा तो कभी मक्खी भी नहीं मारता था।

हमारे बच्चे तो महज इसलिए पकड़ लिए जाते हैं कि हम मुसलमान हैं।

इसी मानसिकता के चलते, देश का दुर्भाग्य, कि एक अल्प—संख्यक कमीशन बना। हाँ, परिभाषा के कारण तब उनमें ईसाई, सिख, बौद्ध आदि को भी जोड़ना पड़ गया। किन्तु इस समुदाय में पुनः मुसलमानों ने अपना सर्वस्व बनाया— क्योंकि वे 'अल्प—संख्यकों' में बहुसंख्यक' हैं।

इस व्यवस्था में देशवासी टुकड़ों में बटते चले गए। जो सम्प्रदाय पहले अपने को हिन्दुओं से अलग नहीं मानते थे, उनमें भी धीरे—धीरे यह भावना घर करती चली गई कि उनका हित भी इसी में है कि वे हिन्दुओं से अलग होकर अल्प—संख्यक के रूप में ही अपनी पहचान बनाएँ। इससे बड़ा मज़ाक भला और क्या होगा कि बहुमत के आधार पर चलने वाले देश में अल्पसंख्यक समुदाय का एक अलग दल है, जिसमें पुनः एक बहुसंख्यक समुदाय की विशेष सत्ता है। ऐसा विचित्र मज़ाक हमारे देश में खेला जा रहा है..... और हमारे देश में ही खेला जा सकता है।

देश को कोई अपनी भाषा न देकर जो हमारी जड़ों पर कुठाराघात किया गया था उस पर नमक छिड़कने का काम यह हुआ कि हमारे शिक्षा मंत्री मौलाना आज़ाद बनाए गए। यह भी दुर्भाग्य कि देश के तत्कालीन कर्णधारों को शिक्षा के महत्व का कोई ज्ञान नहीं था। नेहरूजी के लिए शिक्षा नौकरी पाने का और उसके द्वारा आर्थिक सम्पन्नता प्राप्त करने का सोपान मात्र था। निश्चित रूप से वे यह नहीं जानते थे कि शिक्षा का सम्बंध आत्म—सम्मान और आत्म—विश्वास से भी है और नैतिकता से भी। वे नहीं जानते थे कि वास्तविक शिक्षा के लिए अपनी जड़ों की पहचान, अपनी संस्कृति, अपने संस्कार और राष्ट्रीय गौरव का ज्ञान भी आवश्यक है। अरबी—फ़ारसी के विद्वान मौलाना आज़ाद देशवासियों को शिक्षा की भला क्या दिशा दे पाते! परिणाम—स्वरूप देश का बहुसंख्यक समाज अपनी जड़ों से कटता चला गया और वातावरण ऐसा बनता चला गया कि यदि कोई अपने को हिन्दू कहे या देश के गौरव अथवा भारतीय परम्परा की बात करे तो उस पर तुरन्त 'साम्प्रदायिक' होने का ठप्पा लगा दिया जाता था।

वास्तव में, शिक्षा का अर्थ मात्र यह नहीं होता कि बच्चा पढ़ता—लिखना सीख रहा है। पढ़ने—लिखने के ज्ञान से भी अधिक, और बहुत अधिक, आवश्यक यह कि बच्चा क्या पढ़ रहा है! देश में प्रकाशित पुस्तकों के साथ ही कैसी पठन सामग्री विदेशों से आकर यहाँ के पाठकों को उपलब्ध हो रही है! स्वतंत्रता के बाद अचानक देश में रूस के साहित्य की भरमार दिखाई दी, विशेषकर बच्चों के लिए चमकदार रंगीन छपाई में सस्ते मूल्य की पुस्तकों की बाज़ार में जैसे बाढ़ आ गई थी। साहित्य, कला, सिनेमा, पत्रकारिता आदि से सम्बद्ध व्यक्तियों के लिए 'सोवियत लैण्ड नेहरू सम्मान' की स्थापना हुई थी। जिसकी चमक से देश के सैकड़ों रचनाकार जुड़े थे। इसी माध्यम से देश में एक विशेष विचारधारा को प्रश्रय मिल रहा था।

वहीं कुछ इंग्लैंड—रिटर्न बुद्धिजीवी अपनी रचनाओं के माध्यम से इस विचारधारा का प्रचार—प्रसार कर रहे थे कि भारत को एक सूत्र में तो अंग्रेजों ने बाँधा था। पहले तो भारत आपस में लड़ने वाले सैकड़ों रजवाड़ों में बँटा था। अंग्रेजों ने हमें सड़कें दीं, रेल दी, बिजली दी और यहाँ के असभ्य जंगली लोगों को सभ्यता का पाठ पढ़ाया। सम्भवतः यही सब देख—सुन कर तब अकबर इलाहाबादी ने कहा था— हम ऐसी सब किताबें काबिले—जपती समझते हैं, जिन्हें पढ़—पढ़ के बच्चे बाप को ख़पती समझते हैं।'

हमारी तत्कालीन शिक्षा नीति ने मूल भारतीय संस्कृति ज्ञान, कला, शिल्प, संगीत, नक्षत्र, विद्या, चिकित्सा, प्रणाली आदि के विद्वानों को हाशिये पर फेंक दिया। भारतीय ज्ञान—विज्ञान की बात करने वाले दकियानूसी और पुरातन पंथी कहलाने लगे।

इस बीच राजनीतिकरण के नये दौर में लगभग सभी क्षेत्रों में, विशेषकर तमिलनाडु में, हिन्दी का प्रखर विरोध हुआ। तब देश के लिए एक अपनी भाषा के महत्व को समझते हुए बच्चों के लिए त्रिभाषाई नियम का विधान हुआ। एक क्षेत्रीय भाषा, दूसरी हिन्दी और तीसरी अंग्रेजी अनिवार्य रूप से पढ़ाने की योजना बनी। किन्तु तब तक बहुत देर हो चुकी थी। इस योजना से हिन्दी का प्रचार—प्रसार तो सीमित ही रहा, किन्तु अंग्रेजी का महत्व तेज़ी के साथ बढ़ा।

हमारी शिक्षा नीति ने वह काम कर दिखाया जो लगभग दो सौ वर्ष पूर्व मैकाले ने प्रारम्भ किया

था—देश को अंग्रेजी देकर भारत में गुलामों की ऐसी प्रजाति बनाने का, जो हर प्रकार अंग्रेजों की नकल करे और हमेशा उनकी गुलाम बनी रहे।

अंग्रेजी यदि अन्य विदेशी भाषाओं की भाँति ही सिखाई जाती तो कोई हानि नहीं थी और हाँ, कुछ हद तक विश्व की सम्पर्क भाषा के रूप में भी पढ़ाई जा सकती थी। किन्तु प्रारम्भिक कक्षाओं से ही अंग्रेजी को अनिवार्य भाषा के रूप में पढ़ाकर हमारी शिक्षा पद्धति ने समाज का बड़ा अहित किया। आज भी, मध्यम एवं निम्न वर्ग के परिवारों के बच्चे, जिनके घरों में अथवा पास—पड़ोस में, जहाँ अंग्रेजी का कोई वातावरण नहीं है, अंग्रेजी तो नहीं सीख पाते, बस अंग्रेज़ियत सीखकर रह जाते हैं।

समाज में अंग्रेज़ियत का बोलबाला इसी नीति का परिणाम है। बाज़ार में, दुकानों आदि पर 'गुडमॉर्निंग सर', 'थैंक्यू सर', 'गुडवाय सर' जैसे अल्प वाक्य धड़ल्ले से सुनाई देते हैं। वस्तुओं के दाम अंग्रेजी में बताए जाते हैं। बस, शेष सम्वाद अपनी भाषा में। सड़क पर रिक्शे वाले, और सब्जी वाले भी टेलिफोन नम्बर अंग्रेजी में बताते सुनाई देंगे। यदि आप किसी को हिन्दी के अंकों में अपना फ़ोन नम्बर बताएँ तो सुनने वाला खीजकर कहेगा—इंग्लिस में बताओ साब।'

अपनी भाषा में पचास प्रतिशत शब्द अंग्रेजी के मिलाए बिना कोई बात करने वाला आज हमें नहीं मिलता। 'फादर सैटरडे को आँगे...बाई ट्रेन...मौर्निंग में।' 'सिस्टर की डेथ हो गई...ये हमारा नेफ़्यू है।' ऐसी भाषा हमारे खून में आ बैठी है। लोगों को यदि विश्वास न हो तो शायद 1947 से पहले बनी फिल्में देखकर विश्वास हो जाए कि तब बच्चे अपने बड़ों को, माताजी, पिताजी, चाचाजी, काका, भइया आदि कहकर सम्बोधित करते थे और पैर छूकर अथवा प्रणाम, नमस्कार आदि कहकर आदर देते थे। किन्तु अब घर—घर में, नौकरों—चाकरों और मज़दूर के घरों में भी, मम्मी—पापा का सम्बोधन घर कर गया है। उत्सवों के अवसर पर भी 'हैप्पी होली'.....'हैप्पी दिवाली', सर....' जैसे स्वर सुनाई देते हैं। वहाँ नया साल शराब पीकर नाचते हुए मनाते हैं, तो हम उनसे भी बढ़—चढ़कर शराब पीकर सड़कों पर दौड़ते चीखते फिरते हैं, और हाँ, अपने देश की प्रतिपदा, गुडी—पड़वा आदि नहीं जानते। उन्होंने वैलेण्टाइन डे प्रारम्भ किया तो हम भी,

चाहे चोरी ही क्यों न करनी पड़े, मँहगे फूल भेंट करके सड़कों पर नाचने गाने लगे। अपना वसन्त-उत्सव भूल गए।

भाषा तो भाषा, हम आँखें मूदकर पश्चिमी देशों की नकल करते जा रहे हैं। इंग्लैण्ड-अमेरिका की बदलती शब्दावली के साथ हमारी भाषा बदलती है। वे यस कहते हैं तो हम भी यस कहने लगे। वे यस की जगह 'या' कहने लगे तो हम भी 'या' कहने लगे। उन्होंने यप कहना प्रारम्भ किया हमने 'यप' भी अपना लिया। इसी प्रकार धन्यवाद के उत्तर में पहले 'नो मेशन,सर' कहा जाता था। हम भी वही बोलते थे। बाद में 'यू आर वेलकम' कहा जाने लगा और फिर 'ऐनी टाइम' बन गया। हम सब की ज्यों-की-त्यों नकल करते रहे।

हम उनके खाने-पीने-पीतजा, कोक आदि को हम तुरन्त अपनाते हैं। उनके वस्त्राभूषण की दौड़कर ज्यों-की-त्यों नकल करते हैं। उन्होंने टाई लगाई तो हमने लगाई, उन्होंने छोड़ी तो हमने छोड़ी। उन्होंने पतली मोरी की पैण्ट पहनी तो वैसे ही पैण्ट सिलवाए। उन्होंने जीन्स धारण की तो हमने जीन्स अपनाई। उन्होंने जीन्स का रंग घिसकर धुँधला किया तो हमने अपनी जीन्स फाड़ डाली। उन्होंने जीन्स में जेबें लगाई तो हमने भी उसमें जेब लगवा लीं।

इसी प्रकार, जन्म दिन पर केक काटने की प्रथा भी है। शुभ अवसर पर लोग मिठाई बाँटे, यह समझ में आता है। किन्तु पश्चिम देशों में मिठाई का प्रचलन नहीं है इसलिए मिठाई के नाम पर वहाँ केक का प्रचलन है। वे जन्मदिन पर मित्रों में बाँटने के लिए केक काटते हैं। प्रथा यह भी है कि वे आयु के जितने वर्ष बीत गए उतनी मोमबत्तियाँ जलाकर बुझाते हैं। हमने अपनी गुलाम मानसिकता के चलते, यह प्रथा भी ज्यों-की-त्यों अपनी ली, जबकि हमारे पास मिठाई सैकड़ों रूपों तथा स्वादों में उपलब्ध है। हमारे यहाँ दीप जलाने की प्रथा है, बुझाने की नहीं। किन्तु आज हर फ़िल्म में, हर धारावाहिक में....और देखा देखी हर घर में, केक काटने और मोमबत्ती बुझाने की नकल होती है।

नयी गुलामी की यह व्यापक मानसिकता, हमारे गाँधी, नेहरू, अम्बेडकर जैसे तत्कालीन नेताओं की अदूरदर्शिता का परिणाम है। देश की उन्नति के लिए

आर्थिक विकास की पंच-वर्षीय योजनाओं का प्रावधान तो किया किन्तु देशवासियों में आत्म-सम्मान और आत्म-विश्वास उत्पन्न करके, उनके नैतिक एवं चारित्रिक विकास के लिए कभी कोई प्रयास नहीं किया गया। पिछले षष्ठाधिक दशकों में आर्थिक विकास तो हुआ है किन्तु हमारी समस्याएँ भी निरन्तर बढ़ी है। आज हर व्यक्ति मात्र अपना 'आर्थिक विकास' करने में जुटा है। यह नहीं जानता कि अपने विकास का नैतिक मार्ग क्या है। सब एक दूसरे को लूटकर भी अपना-अपना लाभ करने में लगे हैं।

हम सब जानते हैं कि देश में दुराचार, अनाचार और व्यभिचार निरन्तर बढ़ा है। घोटालों के युग में आ पहुँचना हमारी उपलब्धि है। देश का लाखों-करोड़ों धन विदेशी बैंकों में जमा है। हम सभी जानते हैं कि आर्थिक विकास के पिछले छः दशकों में जो धन योजनाओं के लिए आवंटित किया जाता था, उसका बड़ा भाग नेताओं, अफसरों, ठेकेदारों आदि की जेब में जाता रहा। विकास कार्यों के लिए जो कल-पुर्जे सामग्री आदि उपलब्ध होती थी उसमें बहुत कुछ निम्न स्तर की होती थी। यदि इस विकास के क्रम में जो काम हुआ वह पूरी ईमानदारी के साथ हुआ होता तो आज देश प्रगति के अनेक सोपान चढ़कर बहुत समृद्ध हो चुका होता।

इस दशक के अन्तिम क्षणों में कुछ अकल्पनीय एवं क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। देर ही से सही, किन्तु जो कुछ हुआ वह सम्भवतः देश को कुछ दिशा दे सके। राजनीति के क्षेत्र में केंद्र में सत्ता परिवर्तन एक ऐसी घटना है जो सम्भवतः कुछ सामाजिक कलषु एवं जड़ता से मुक्ति दिला सके, यद्यपि देश का संविधान सरकार को अपनी नीतियों के अनुरूप निर्णय लेने में बाधाएँ उत्पन्न करता है। विरोधी पक्ष खुलकर सत्ता पक्ष के विरोध में लामबद्ध हैं इस उद्घोषणा के साथ कि 'तुम्हारे पास कितना भी बहुमत हो, हम काम नहीं करने देंगे।'

संयोग है, कि केंद्र की कार्यावधि का आधा समय बीतने के बाद, उत्तर प्रदेश में योगी सरकार स्थापित होने के फलस्वरूप केंद्र को बल मिला है। किन्तु तभी कुछ विदेशी शक्तियाँ पूरा बल लगाकर सरकार के मार्ग में बाधाएँ उत्पन्न कर रही हैं—जिनसे

समर्थन पाकर समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग आतंकवादी गतिविधियों के साथ सक्रिय हो गया है।

देश निःसंदेह एक बहुत ही दुर्गम निर्णायक मोड़ पर आ खड़ा हुआ है। देश की जनता अपने निहित स्वार्थ को भुलाकर आगामी संकट की घड़ियों में, सरकार का साथ नहीं देती तो देश, क्या पता, दासता की किसी नई खाई में जा गिरे।

बहुत देर हो चुकी है.....बहुत, बहुत देर हो चुकी है, किन्तु संकल्प के साथ जाग उठने के लिए कभी भी

देरी का रोना रोते रहना उचित नहीं है। देश के आर्थिक विकास को और अधिक सार्थक विकास को और अधिक सार्थक बनाने के लिए तथा सामाजिक जीवन को सम्मानजनक एवं अपराध-मुक्त बनाने के लिए आवश्यक है कि देश की शिक्षा नीति हमें हमारी जड़ों से जोड़े और देशवासियों में राष्ट्रीय गौरव तथा नैतिकता की भावना उत्पन्न करे।

सम्पर्क सूत्र – बी-120(प्रथमतल) सेक्टर –26 नोएडा
drsialok@gmail.com

– गुरु पूर्णिमा –

गुरु का वरण – तस्मै श्री गुरुवे नमः

भारतवर्ष की महिमामयी संस्कृति में, ऋषियों की परम्परा में तीन गुरु माने जाते हैं। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि मनुष्य का प्रथम गुरु माता है, द्वितीय गुरु पिता है और तृतीय गुरु आचार्य है। वस्तुतः वह संतान वास्तव में भाग्यशाली है, जिसके माता-पिता धार्मिक, विद्वान् और मानवता के प्रशंसनीय गुणों से युक्त हों। माता-पिता का वरण नहीं किया जाता, वे जीव के कर्मानुसार परमेश्वर की व्यवस्था से प्राप्त होते हैं। माता-पिता जन्म देते हैं जीवन नहीं, गुरु जीवन देता है जन्म नहीं। गुरु या आचार्य का चयन या वरण किया जाता है। जन्म की मृत्यु होती है, जीवन की नहीं ! इसलिये गुरु चाहे उसका रूप कोई भी हो, जीवन उसी का दिया हुआ होता है।

मनुष्य जब संसार में आता है, तो उसे अपने जीवन से संबंधित विभिन्न क्रियाकलापों हेतु अनेक गुणों की जरूरत पड़ती है। इसलिये उसे कई गुणवान पुरुषों, महिलाओं, पदार्थों व अन्य को गुणों के रूप में स्वीकार करना पड़ता है। इसी गुरुत्व बल के प्रभाव में आकर हमारे प्रसिद्ध प्रमाणिक ग्रन्थ महाभारत का एक भील बालक एकलव्य धनुर्विद्या सीखने की इच्छा लेकर धनुर्विद्या के प्रसिद्ध गुरु आचार्य श्री द्रोणाचार्य के पास गया, परन्तु उन्होंने अपनी असमर्थता बताकर विद्या सिखाने से मना कर दिया, तो उसने गीली मिट्टी से उनकी मानवाकृति बनाई तथा उसी को गुरु मानकर अद्वितीय धनुर्विद्या सीखी। इससे उसने गुरु, गुरुत्व और गुरुत्वाकर्षण तीनों को पीछे धकेलते हुए यह सिद्ध कर दिया कि अभ्यास ही गुरु है।

गुरु कैसा होना चाहिए, इसका वर्णन ऋग्वेद 4/5/3 में भी किया गया है। इसके अनुसार गुरु का प्रथम गुण विद्यावृद्ध और विनयवृद्ध बताया गया है। विद्या के साथ उसमें विनय भी होना चाहिए। सच्ची विद्या वही है, जो विनय देती है। द्वितीय गुण वह अनुभव से परिपक्व हो। तीसरा गुण यह अतुल पराक्रमी हो। जो अपने शिष्यों के अज्ञान को दूर कर उनमें ज्ञानाधान कर सकता हो। वह ब्रह्मचर्य का पूर्ण तथा पालन करने वाला हो। ब्रह्मचर्य सिद्ध मनुष्य अपने शिष्यों में ज्ञान डालने में समर्थ हो जाता है। चतुर्थ गुण जो अत्यन्त गुप्त को भी विशेषतः जानता हो अर्थात् गुप्त से गुप्त रहस्य को जानता हो। वह विशेषज्ञ होना चाहिए। ऐसा गुरु जो ज्ञान देता है, वह सान्त्वना व शान्ति देने वाला होता है। अन्तिम और पांचवा गुण बताया है, वह बलवान हो। उसमें पर्याप्त शरीर बल हो। रोगी या दुर्बल शरीर वाला अध्यापन का शिक्षण कार्य भली-भांति नहीं कर सकता है।

भगवान राम व कृष्ण के भी गुरु थे। रावण व कंस के भी गुरु थे। एक बन गया, एक मिट गया। एक का नाम हो गया, एक बदनाम हो गया। एक आबाद हो गया, एक बरबाद हो गया। इसलिए गुरु ही बनाता है, गुरु ही चलाता है और गुरु ही मिटा देता है।

अतः शिष्य को उचित गुरु के चरणों में उपस्थित होकर, गुरु के अनुशासन व नियंत्रण में विद्या ग्रहण करके अपने जीवन का निर्माण करना चाहिए।। ओम् शान्ति।।

सामवेद में सौर्य आंधी का विवरण

- अचार्या उत्तरा नेरकर

प्रायः हम सभी जानते हैं कि चारों वेदों में बीज रूप से हर प्रकार की विद्या विद्यमान है। फिर भी वेदों की वैज्ञानिक निधि के बारे में कम सुनाई पडता है, धार्मिक अंश के बारे में अधिक। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ-प्रकाश और ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका में अनेक ऐसे वैज्ञानिक तथ्यों का खुलासा किया है जो उनके समय में समाज के ज्ञान-पटल से मिट गये थे और वैज्ञानिकों को अज्ञात थे। उनकी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए, इस लेख में मैं सामवेद में सौर्य-आंधी के विवरण के विषय में लिख रही हूँ।

कुछ वर्षों से वैज्ञानिक सौर्य-आंधी के विषय में जानते हैं। सूर्य से निकलती प्रकाश की किरणों से तो हम सभी परिचित हैं। अन्य इलैक्ट्रोमैग्नेटिक किरणों (ultraviolet rays, infrared rays) के बारे में भी हम जानते हैं। इनके साथ-साथ, electron, proton, और अन्य अणुवंशों की एक धारा बहुत ही वेग से सूर्य से चारों ओर फैलती है। इसे 'सौर्य आंधी (solar wind) कहते हैं। इसकी गति लगभग प्रकाश की गति के बराबर होती है। यह 'आंधी' यदि बेरोकटोक पृथ्वी पर पहुंच जाए, तो सभी प्राणी मर जाएं। परन्तु ऐसा होता नहीं क्योंकि पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति (magnetic field) से यह पहले ही परे फेंक दी जाती है। फिर भी इसका एक छोटा अंश पृथ्वी तक पहुंच जाता है, और यह मेघों के बरसने में है सहायक भी होता है।

अब आगे इसका विवरण वेदों में पढ़िए। यह मेरी व्याख्या स्व० पं० तुलसीराम स्वामी जी के पदार्थ पर आधारित है।

प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्जना।

अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि॥

(सामवेद १।५।७)

पदार्थः - (दैवोदासः) द्युलोक का दास, अर्थात् विद्युत्-सम्बन्धी (अग्निः) ऊर्जा (इन्द्रः, न) बादलों में रहने वाली बिजली के समान (मातरम्, पृथिवीम्) माता पृथिवी के (अनु) चारों ओर (मज्जना) बलपूर्वक (प्र, वि,

वावृते) अत्यन्त जोर से फैल रही है। और (नाकस्य, शर्मणि, तस्थौ) द्युलोक के घर में स्थित है।

व्याख्या - यह 'दैवोदासः अग्निः' - जो सूर्य की दास है, विद्युत्-सम्बन्धी है, और द्युलोक में स्थित है - electrons और protons की सौर्य-आंधी है। क्योंकि, पहले तो, यह सूर्य से उत्पन्न होती है। दूसरे, electrons और protons का गतिशील होना ही विद्युत् है। तीसरे, 'द्युलोक का घर' सूर्य है, और उस के साथ-साथ अन्तरिक्ष का वह भाग भी है जहां तक सूर्य का प्रभाव है। सो, यह बाहरी ग्रहों की परिधि तक होता है। लेकिन ग्रह के पास, जहां ग्रह, जैसे पृथ्वी, का प्रभाव अधिक होता है, वहां द्युलोक नहीं, अपितु पृथ्वी लोक ही माना जाता है। अतः, पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र तक पृथ्वी लोक होता है। क्योंकि पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति सौर्य-आंधी को पृथ्वी लोक में प्रवेश नहीं करने देती, इसलिए यह द्युलोक तक ही सीमित रहती है।

सो, मन्त्रार्थ हुआ - बादलों में रहने वाली बिजली के समान, सूर्य के अधिकार में रहने वाली विद्युत् पृथ्वी के चारों ओर अत्यन्त वेग से और बलपूर्वक फैल रही है, परन्तु द्युलोक में स्थित रहते हुए।

अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि।

अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण॥

(सामवेद १।५।८)

पदार्थः - (सुक्रतो) हे इन्द्र! तू (ज्मः, अधि) पृथिवी के ऊपर (अध, वा) और नीचे (बृहतः, रोचनात्, दिवः, अधि) बड़े प्रकाशमान् द्युलोक के नीचे (अया) इस (तन्वा) विस्तृत शरीर से (मम, गिरा) मेरी वाणी के साथ (वर्धस्व) बढ़, और (जाता) यवादि फसलों को (पृण) तृप्त वा पुष्ट कर।

व्याख्या - पुनः, सौर्य आंधी को सम्बोधित करके कहा जाता है कि वह, बढ़ते-बढ़ते, अपना एक अंश द्युलोक से नीचे-पृथ्वी को - दे दे जिससे पृथ्वी पर होने वाली फसलें वर्षा प्राप्त करके पुष्ट हो जाएं।

कायमानो वना त्वं यन्मातृरजगन्नपः ।
न तत्ते प्रमृषे निवर्तनं यदूरे सन्निहाभुवः ॥
(सामवेद १।५।६)

पदार्थः — (अग्ने) हे अग्नि ! (यत्) जो कि (त्वम्) तू (वना) किरणों को (कायमानः सन्) चाहता हुआ (अपः) व्यापक विद्युत्-रूपी (मातृरजगन्) माताओं को प्राप्त होता है (उससे जान जाता है कि) (यत्) जो (इह) यहां पृथिवी आदि पर (दूरे, आभुवः) तू दूर हो गया (तत्, निवर्तनम्) वह दूर होना (ते) तुझे (न, प्रमृषे) नहीं अच्छा लगता ।

व्याख्या — यहां एक और अनोखे वैज्ञानिक तथ्य का विवरण है। सौर्य-आंधी का जो अंश पृथ्वी पर पहुंचता है, उसका अधिकतर भाग पृथ्वी के दोनों चुम्बकीय ध्रुवों पर वायुमण्डल में प्रवेश करता है। वहां यह विद्युत्, Neon lights के समान, लाल-हरे-पीले प्रकाश में बदल कर, एक अद्भुत लीला-सी करती है, जिसे Aurora Borealis (Northern Lights) और Aurora Australis (Southern Lights) के नाम से जाना जाता है।

इस ज्ञान के प्रकाश में मन्त्र का अर्थ एकदम सरल हो जाता है — यह व्यापक सौर्य-आंधी जहां पृथ्वी को प्राप्त होती है, वहां प्रकाश की किरणों में बदल जाती है। यह इसका ध्रुवों पर उतरना इस बात का द्योतक है कि किसी अप्रत्यक्ष कारण से यह पूरी पृथ्वी पर न उतर पाई, वरन् ध्रुवों पर ही उतर सकी है। उतरना चाहती तो सर्वत्र है, परन्तु कोई शक्ति उसे सीमित कर रही है !

इस प्रकार वेदों में आलंकारिक रूप से अनेक वैज्ञानिक विद्याएं निहित हैं — कुछ ऐसी भी जो अभी अज्ञात हैं। इसके उद्घाटन के लिए आवश्यक है कि वेदविद् वैज्ञानिकों से जुड़ें और एक साथ वैदिक मन्त्रों के गूढ़ वैज्ञानिक अर्थों को समझें।

आर्ष क्रान्ति पत्रिका के लिए आर्य

लेखक

बन्धु अपनी सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ भेंजें।

उपकरण संहार के ले

उपकरण संहार के ले, सृजन का यह खेल
कैसा,
क्लीव जन से क्रान्ति का, पाणिग्रहण अनमेल
कैसा?

भित्तिभेदक चल पड़े हैं, आज युग निर्माण
करने।

संस्कृति भक्षक चले हैं संस्कृति का त्राण करने।
है भला पाखण्ड और सदज्ञान का यह मेल
कैसा? |१। उपकरण...

तोड़ डाले थे जिन्होंने, तार वीणा के पुराने।
अब वही फिर चल पड़े हैं, क्रान्ति की सरगम
बजाने।

खोपड़ी में यह छछून्दर के, चमेली तेल
कैसा? |२। उपकरण...

उस पुरानी मद्य को ही, बोटलों में पुनः भर
कर।

गरल को अमृत बताते हैं, हमें लेबल बदलकर।
आर्तशोषण का निकाला, ढंग यह अलबेल
कैसा? |३। उपकरण...

पतन के कारण संजोकर, साथ में अपने लिए।
कह रहे हम बढ़ रहे, उत्थान के सपने लिए
वेदप्रिय के शत्रुओं से "वेदप्रिय" का मेल
कैसा? |४। उपकरण...

- वेदप्रिय शास्त्री
शीताबाड़ी, केलवाड़ा

अन्धविश्वास के पोषक तुलसीदास

— प्रियांशु श्रेष्ठ

हिन्दी साहित्य में तुलसीदास का नाम एक आदर्श संत और कवि के रूप में अंकित है। कहा जाता है कि पुरातन परम्परा को उजागर करने में तुलसीदास ने विशेष योगदान दिया था। अपने जीवन के सम्पूर्ण अनुभवों के सहारे इकहत्तर वर्ष की अवस्था में उन्होंने 'रामचरितमानस' का प्रणयन किया था। रामचरितमानस को हिन्दू समाज में स्थान विशेष प्राप्त होने के कारण कालान्तर में यह 'तुलसी-रामायण' के नाम से प्रख्यात है तथा पौराणिक समाज इसे अपनी सनातन संस्कृति की छवि मानता है। इसी रामचरितमानस को रामानन्द सागर ने 'रामायण' नाम देकर अपने टीवी सीरियल में दर्शकों को रामराज्य का वर्णन दिखाया था।

तुलसीदासकृत यह ग्रन्थ पुरुषोत्तम श्रीराम के समकालीन न होने के कारण प्रामाणिक तथा विश्वसनीय नहीं है, यह बात पौराणिक पण्डित जानते हुए भी इसकी प्रशंसा के पुल बांधने शुरू कर दिए। परिणामस्वरूप जन सामान्य अपनी वैदिक संस्कृति, सभ्यता व परम्पराओं से भटकती चली गई और आज अकर्मण्यता के सागर में गोते लगा रही है। नीर-क्षीर विवेकी परमहंस स्वामी दयानंद सरस्वतीजी ने अपने ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में तुलसीदासकृत रामचरितमानस को अपाठ्य घोषित किया है। इसका मुख्य कारण यह था कि तुलसी की मान्यता भ्रामिक व वैदिक सिद्धान्तों, परम्पराओं के प्रतिकूल थी। आज भी विधर्मी रामचरितमानस के आधार पर निष्ठुर और आलोचनापूर्ण लेखनी से रामायण के आदर्श पात्रों को प्रचण्ड आघात पहुंचाने की कोशिश किया करते हैं। इस दशा में हम अपना कर्तव्य समझते हैं कि रामायण जैसे अद्वितीय ऐतिहासिक ग्रन्थ से दिग्भ्रमित हुए पाठकों का भ्रमभंजन कर उन्हें वैदिक पथ पर कदम बढ़ाने की ओर प्रेरित करें।

• **ईश्वर विषयक तुलसीदास की भ्रमपूर्ण विचारधारा**
गोसाईंजी की बुद्धि ईश्वर के स्वरूप को परिभाषित

करने में अशक्त रही है। वेद में वर्णित ईश्वर के यथार्थ स्वरूप का त्याग करके तुलसीदास ने मूर्तिपूजा, अवतारवाद आदि का प्रतिपादन किया है। उनकी यह मान्यता वैदिक सिद्धान्तों की दृष्टि से अस्वीकार्य थी तथापि उन्होंने इसका पुरजोर समर्थन किया है। आप एक बार 'मानस' की पोथी अपने हाथ में लीजिये और उसे ध्यान से पढ़िए। आप देखेंगे कि तुलसीदास ने मूर्तिपूजा और रामचन्द्रजी का ईश्वरावतार होना यों ही संयोग-वश नहीं, बल्कि जान-बूझकर लिखा है, सो भी एक-आध बार नहीं बल्कि अनेक बार, अथवा यों कहिए कि जब कभी उन्हें वैसा लिखने का मौका मिला तभी वैसा लिखने से बाज नहीं आये। फल यह हुआ कि आपने मूर्तिपूजा और अवतारवाद की इस कील को अपने पाठकों के मस्तिष्क में अपनी प्रौढ़ लेखनी के हथौड़े से बार-बार ठोकते और धंसाते चले गए। लंकाकाण्ड में श्रीरामचन्द्रजी द्वारा मूर्तिपूजा करना (लिंग थापि बिधिवत करि पूजा अर्थात् शिवलिङ्ग की स्थापना करके विधिपूर्वक उसका पूजन किया। —लंका०, दो० १ चौ० ३) लिखकर तुलसीजी ने श्रीराम की उपासना पद्धति पर प्रश्नचिन्ह लगाया है क्योंकि दूसरी ओर बालकाण्ड और अयोध्याकाण्ड में आप उन्हें सन्ध्या पद्धति द्वारा ईश्वरोपासना करने वाला बताते हैं।

बिगत दिवसु गुरु आयसु पाई। संध्या करन चले दोउ भाई।।

—बाल०, सो० २३६ चौ० ३

अर्थात् — दिन बीत गया और गुरु की आज्ञा पाकर दोनों भाई सन्ध्या करने चले।

पुरजन करि जोहारु घर आए। रघुबर संध्या करन सिधाए।।

—अयोध्या०, दो० ८८ चौ० ३

अर्थात् — पुर के लोग प्रणाम करके अपने-अपने घर आये और रघुनाथजी सन्ध्या करने पधारे।

हम पाठकों का ध्यान यहां भी आकृष्ट करेंगे कि तुलसी ने ईश्वर के प्रति किन दुर्वचनों का प्रयोग किया है। ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त,

निर्विकार अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है उसी की उपासना करनी योग्य है, यह परिभाषा महर्षि दयानन्दजी द्वारा प्रतिपादित है जो कि आर्यसमाज के द्वितीय नियम में श्लिष्ट है। दूसरे शब्दों में ईश्वर की यथार्थ परिभाषा यही है किन्तु तुलसी के निम्न कथन ने वैदिक सिद्धान्तों का गला ही घोट दिया—

**सुनि ससोच कह देबि सुमित्रा। बिधि गति बड़ि
बिपरीत बिचित्रा।।**

**जो सृजि पालइ हरइ बहोरी। बालकेलि सम बिधि मति
भोरी।।**

—अयोध्या०, दो० २८१ चौ० १

अर्थात् — यह सुनकर सुमित्रा जी शोक के साथ कहने लगीं — विधाता की चाल बड़ी ही विपरीत और विचित्र है, जो सृष्टि को उत्पन्न करके पालता है और फिर नष्ट कर डालता है। विधाता की बुद्धि बालकों के खेल के समान भोली अर्थात् विवेक शून्य है।

ईश्वर को पूर्णतया न जानने के कारण उसके अवतार लेने की कल्पना भी तुलसीजी के भ्रान्त मस्तिष्क की उपज मात्र है। जो ईश्वर अपने अनन्त सामर्थ्य से सम्पूर्ण जगत् का सृजन करता है, क्या वह अपने अनन्त बल व शक्ति से क्षुद्र प्राणियों का संहार नहीं कर सकता? इस हेतु ईश्वर का अवतरण होना उसके नियम के विरुद्ध सिद्ध होता है।

तब कछु काल मराल तनु धरि तहँ कीन्ह निवास।

सादर सुनि रघुपति गुन पुनि आयउँ कैलास।।

—उत्तर०, दो० ५७

अर्थात्— तब मैंने हंस का शरीर धारणकर कुछ समय वहां निवास किया और श्रीरघुनाथजी के गुणों को आदरसहित सुनकर फिर कैलास को लौट आया।

मीन कमठ सूकर नरहरी। बामन परसुराम बपु धरी।।

—लंका०, दो० १०६ चौ० ४

अर्थ— आपने मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन और परशुराम के शरीर धारण किये। हे नाथ! जब—जब देवताओं ने दुःख पाया, तब—तब अनेक शरीर धारण करके आपने ही उनका दुःख नाश किया।

यहां एक और बात विचारने योग्य है कि जानवरों ने किस प्रकार राक्षसों का विनाश और देवताओं का कष्ट दूर किया? अपने अवतारवाद की हंसी तुलसी ने स्वयं

उड़ाई है। श्रीरामचन्द्र जी को ईश्वर का अवतार बताकर तुलसीदास ने अपने इष्टदेव ही की अवहेलना की है क्योंकि परमात्मा के पद के ऊपर कोई दूसरा पद नहीं होता। जब गोसाईंजी श्रीरामचन्द्रजी को सन्ध्या और मूर्तिपूजा करने वाला बताते हैं तो आप ही बताइये, क्या ईश्वर ही ईश्वर को स्थापित कर उसकी पूजा करेगा? सच बात तो यह है कि रामचन्द्रजी कोई ईश्वर नहीं बल्कि एक मनुष्य थे और अन्य मनुष्यों की तरह मानवजाति सुलभ कमजोरियों से खाली न थे। स्वयं रामचरितमानस ही इसकी साक्षी है। अरण्यकाण्ड दो० २६ चौ० ५ एवं लंकाकाण्ड दो० ६० चौ० ३ मेरे कथन का प्रबल प्रमाण है।

• नामस्मरण विधि से मोक्ष

गोस्वामीजी श्रीराम के अनन्य भक्त थे और राम—नाम के महत्त्व का वर्णन कर डालने में उन्होंने बालकाण्ड की कितनी ही चौपाइयां एवं दोहे खर्च कर डाले हैं। उनके विश्वासानुसार यह राम—नाम का ही प्रताप था जिसने गणेशजी को देवताओं में प्रथम पूज्य बना दिया।

**महिमा जासु जान गनराउ। प्रथम पूजिअत नाम
प्रभाऊ।।**

—बाल०, दो० १८ चौ० २

अर्थात्— जिसकी महिमा को गणेशजी जानते हैं, जो इस 'राम' नाम के प्रभाव से ही सबसे पहले पूजे जाते हैं।

गोसाईंजी का यह कथन पूर्णतः असत्य ज्ञात होता है, कारण कि ऐसे जीवधारी प्राणों के अस्तित्व में विश्वास नहीं होता जिसका धड़ तो मनुष्य का और मस्तक हाथी का हो और जो राम—नाम जपा करता हो। इसी प्रकार राम—नाम का महत्त्व दिखलाने के लिए किसी रामोपासक पुराणकार की एक और भ्रान्त कल्पित कथा का अनुगमन तुलसीजी ने आंख मूंद कर लिया है।

**जान आदिकबि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा
जापू।।**

—बाल०, दो० १८ चौ० ३

अर्थात्— आदिकवि श्रीवाल्मीकिजी रामनाम के प्रताप को जानते हैं, जो उलटा नाम (मरा—मरा) जपकर पवित्र हो गए।

**उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म
समाना।।**

—अयोध्या०, दो० १६३ चौ० ४

अर्थात्— जगत् जानता है कि उलटा नाम (मरा—मरा) जपते—जपते वाल्मीकिजी ब्रह्म के समान हो गए।

तुलसी का यह कथन भी सर्वथा मिथ्या है। शुद्ध और ब्रह्मज्ञानी बनने का एकमात्र उपाय वेदादि आर्ष ग्रन्थों का स्वाध्याय व तदानुकूल आचरण है, न कि राम—नाम का जपना। इसे ऐसे समझिए—

‘किसी एक मूर्ख को एकान्त में इस प्रकार रखो कि वह किसी सदाचारी विद्वान् से मिलने न पाए और उसके नियमित रूप से भरण—पोषण का प्रबन्ध करके उससे अहर्निश, खाते—पीते, उठते—बैठते, सोते—जागते, राम—नाम का जप करने के लिए कह दो। पच्चास वर्षों के बाद भी आप उसकी मूर्खता में किसी प्रकार की कमी या उसकी बुद्धि में किसी प्रकार का प्रस्फुरण न पा सकेंगे। एक सिद्ध महात्मा तो बनना दूर रहा।’

एक अन्य उदाहरण लीजिए— ‘किसी तोते को आप कितना भी राम—राम, राधे—राधे आदि रटा दीजिये। इससे वह क्या योगी तथा तत्त्वदर्शी बन सकता है? नहीं। योगी बनना तो दूर की बात, वह योग की कल्पना भी नहीं कर सकता है।’

उक्त उदारहण से स्पष्ट है कि मनुष्य की आत्मोन्नति व मुक्ति किसी नाम के जप से नहीं हो सकती। ऋषि वाल्मीकिजी वेदादि ग्रन्थों के स्वाध्याय व सत्संग से योगी और ब्रह्मज्ञानी बनने में समर्थ हुए थे, न कि राम—नाम के उल्टे जाप से। जब गोसाईंजी सब प्रकार के चुटकुले बताते—बताते थक गए तो अन्त में आपने मुक्ति ‘विचारी’ को कौड़ी के मोल लुटा दिया और नीच प्रवृत्ति में रत वेश्यादि को भी पुरस्कार—स्वरूप मुक्ति दे डाली—

अपतु अजामिल गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ।।

—बाल०, दो० २५ चौ० ४

अर्थ— नीच (पापी) अजामिल, हाथी और वेश्या भी श्रीहरि के नाम के प्रभाव से मुक्त हो गए।

गोसाईंजी! यह भी बता देते कि रामराज्य में वेश्या कौन थी? मुक्ति का मार्ग भी आपने अपने मनचाहे तरीके से बनाया है, जो मनुष्य को अकर्मण्य, क्लान्ति और अनवधानता की ओर प्रेरित करती है—

जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं।।

जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि। सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि।।

—लंका०, दो० २६चौ० १

अर्थात्— जो मनुष्य मेरे स्थापित किए हुए इन रामेश्वरजी का दर्शन करेंगे, वे शरीर छोड़कर मेरे लोक को जायेंगे और जो गंगाजल लाकर इन पर चढ़ाएगा, वह मनुष्य सायुज्य मुक्ति पाएगा अर्थात् मेरे साथ एक हो जाएगा।

नामु राम को कलपतरु कलि कल्याण निवासु।

जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु।।

—बाल०, दो० २६

अर्थात्— कलियुग में राम का नाम कलपतरु (मनचाहा पदार्थ देनेवाला) और कल्याण का निवास (मुक्ति का घर) है, जिसको स्मरण करने से भाँग—सा (निकृष्ट) तुलसीदास तुलसी के समान (पवित्र) हो गया।

भायँ कुभावयँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

—बाल०, दो० २७चौ० १

अर्थात्— अच्छे भाव (प्रेम) से, बुरे भाव (वैर) से, क्रोध से या आलस्य से, किसी तरह से भी नाम जपने से दसों दिशाओं में कल्याण होता है।

वेद व ऋषियों ने सांसारिक भोगेश्वर्य्य को निःसार, अचिरस्थायी, अतः उपेक्षणीय बताते हुए मोक्ष को ही परम पुरुषार्थ का लक्ष्य माना और सभी को उसी की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने की सलाह दी। उपनिषदों का वचन है— ‘तपसा चीयते ब्रह्म’ अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति तप द्वारा ही सम्भव है (मुण्डको० १. १. ८)। तुलसीजी यदि जरा भी ऋषिकृत ग्रन्थों का स्वाध्याय करते तो ईश्वर व मोक्ष के वास्तविक रूप से अनभिज्ञ न होते।

• अनेकेश्वरवाद का ढोल

तुलसीदासजी के विचार अनेकेश्वरवाद का समर्थन करते हैं जबकि स्वामी दयानन्दजी द्वारा वेद विषयक वैचारिक क्रान्ति सत्य के जिज्ञासुओं के समक्ष वेदों में एकेश्वरवाद का सिद्धान्त प्रकट करती है। गोसाईंजी अनेकेश्वरवाद का ढोल बजाकर ईश्वर को अपमानित करने में अपनी बुद्धिमत्ता समझते थे, जैसा कि तुलसीदास के कथन से अभिप्रेत है—

राम नाम सिव सुमिरन लागे। जानेउ सतीं जगतपति जागे।।

—बाल०, दो० ५६चौ० २

अर्थात्— शिवजी राम—नाम स्मरण करने लगे। तब सतीजी ने जाना कि अब जगत् के स्वामी (शिवजी) जगे।

श्री रघुवीर प्रताप ते सिंधु तरे पाषाण। ते मतिमंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभु आन॥ लंका०, दो० ३
अर्थात्— श्री रघुवीर के प्रताप से पत्थर भी समुद्र पर तैर गए। ऐसे श्री रामजी को छोड़कर जो किसी दूसरे स्वामी को जाकर भजते हैं वे निश्चय ही मंदबुद्धि हैं।

यहां तुलसी ने घोषणा कर दिया कि श्रीरामजी के अतिरिक्त अन्य को भजने वाले मन्दबुद्धि हैं लेकिन अन्यत्र वह इसका विरोध करते हुए लिखते हैं—

सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा॥

संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी॥
—लंका०, दो० १६चौ०

अर्थात्— जो शिव से द्रोह रखता है और मेरा भक्त कहलाता है, वह मनुष्य स्वप्न में भी मुझे नहीं पाता। शंकरजी से विमुख होकर विरोध करके जो मेरी भक्ति चाहता है, वह नरकगामी, मूर्ख और अल्पबुद्धि है।

शिव से द्रोह रखने की प्रथम शुरुआत तो आपने ही की। हिन्दू समाज को अनेकेश्वरवाद के सागर में उड़ेलने का कार्य गोसाईंजी ने बखूबी से निभाया है। अनेकेश्वरवाद सर्वथा वेद के विरुद्ध है क्योंकि वेद एकेश्वरवाद का प्रतिपादन करते हुए उच्च स्वर में घोषणा करता है— विद्वान् लोग एक ही परमेश्वर को अनेक नामों से पुकारते हैं (ऋ० १.१६४.४६)। वेदों में एकेश्वरवाद के समर्थन में अतिशय प्रमाण मिलते हैं लेकिन तुलसीदास की ऊर्जा भ्रम मात्र को प्रतिपादित करने में व्यय हुई है।

• नारी जाति के प्रति गोसाईंजी का दृष्टिकोण

गोसाईंजी के रामचरितमानस का समीक्षात्मक अध्ययन करने पर बहुत—सी शास्त्र विरुद्ध बातें मिलेंगी, पर आपने जो स्त्री जाति के विषय में सम्मति दी है उससे कोई भी विद्वान् शायद ही सहमत हो। आप स्त्री जाति में केवल दोष ही दोष देखते हैं, गुण एक भी नहीं। जब—जब आपको उनकी निन्दा करने का मौका मिलता है, तब—तब उस मौके से आप नहीं चूकते। यह बात दूसरी है कि आप किसी

महिला—विशेष के पक्ष में अपवाद—स्वरूप कुछ गुण लिख दें। निम्नलिखित उद्धरणों पर दृष्टिपात कीजिए—
अधम ते अधम अधम अति नारी। —अरण्य०, दो० ३४ चौ० २

अर्थात्— जो अधम से भी अधम हैं, स्त्रियां उनमें भी अत्यन्त अधम हैं।

अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि। —अरण्य०, दो० ४४

अर्थात्— युवती स्त्री अवगुणों की मूल, पीड़ा देनेवाली और सब दुःखों की खान है।

सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ।

जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय॥

—अरण्य०, सो० ५

अर्थात्— स्त्री जन्म से ही अपवित्र है, किन्तु पति की सेवा करके वह अनायास ही शुभ गति प्राप्त कर लेती है। आज भी 'तुलसीजी' भगवान को प्रिय हैं और चारों वेद उनका यश गाते हैं।

स्त्री को जन्म से अपवित्र बतलाकर आप क्या सिद्ध करना चाहते थे? जब पति (पुरुष) की सेवा करके स्त्री शुभगति को प्राप्त होती है तो क्या वह पुरुष आकाश से जन्म लेता है?

अवगुन आठ सदा उर रहहीं।

साहस अनृत चपलता माया। भय अबिबेक असौच अदाया॥
—लंका०, दो० १५ चौ० १ और २

अर्थात्— स्त्री का स्वभाव सब सत्य ही कहते हैं कि उसके हृदय में आठ अवगुण सदा रहते हैं— साहस, झूठ, चञ्चलता, माया (छल), भय, अविवेक (मूर्खता), अपवित्रता और निर्दयता।

यहां तुलसीदास ने रावण को तीर और स्त्री को निशाना बनाकर प्रहार किया है। यह एक अच्छा नुस्खा अपनी 'नानापुराण—निगमागसम्मत' बुद्धि से बतला दिया। यही आपने पुनः अरण्यकाण्ड में दोहराया है—

भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी॥
—अरण्य०, दो० १६चौ० ३

यहां स्त्रीमात्र पर एक अति घृणित लांछन लगाकर तुलसीबाबा ने अपनी घटिया मानसिकता का प्रदर्शन किया है। आपके उक्त कथन का अभिप्राय यह है कि स्त्रियां ऐसी कुबुद्धि होती हैं कि वे केवल सुन्दर पुरुष

चाहती हैं, चाहे रिश्ते में वह उनका भाई, पिता, पुत्रादि क्यों न हो। क्या गोसाईंजी के इस कथन से यह ध्वनि नहीं निकलती कि स्त्रियां इस प्रकार की भ्रष्ट जीव हैं कि वे अपने भाई आदि से भी, यदि वे रूपवान हों तो, अपनी काम-पिपासा को सन्तुष्ट करा लेने में तनिक भी नहीं हिचकती? माना कि यह वचन शूर्पणखा के प्रति कहा गया है लेकिन विचारणीय बात यह है कि इस वचन की कथन-शैली सैद्धान्तिक है न कि वैयक्तिक। दूसरी अर्द्धधाली से उक्त ध्वनि और भी स्पष्ट हो जाती है—

होइ बिकल सक मनहि न रोकी। जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी।।

इसमें स्त्रीमात्र को पुंश्चली, भ्राता-पिता आदि के भी सौन्दर्य पर मुग्ध होनेवाली तथा इन्द्रिय-लोलुप कहा गया है। गोसाईंजी की सम्मति में संसार की समस्त बुराइयों और दुर्गुणों की जड़ तथा सद्गुणों की नाशक स्त्रियां ही हैं। जब स्त्री की निन्दा करके आपके हृदय में टंडक मिल गया तो नारी विषयक मत की पूर्णाहुति यह कहकर कर दी कि—

**काह न पावक जारि सक का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ।।**

• श्रीराम के पिता दशरथजी का पुनः जीवित हो उठना

मृत शरीर का कुछ क्षण के लिए जीवित होकर आशीर्वाद देना यानी ईश्वर के नियम के साथ समझौता करना, यह केवल तुलसीजी के हवाईकिले में सम्भव हो सकता है।

तेहि अवसर दसरथ तहँ आए। तनय बिलोकि नयन जल छार।

अनुज सहित प्रभु बंदन कीन्हा। आसिरबाद पिताँ तब दीन्हा।।

—लंका०, दो० १११ध्वौ० १

अर्थात्— उसी समय दशरथजी वहां आये। पुत्र (श्रीरामजी) को देखकर उनके नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल छा गया। छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित प्रभु ने उनकी वन्दना की और तब पिता ने उनको आशीर्वाद दिया।

इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं कि वेद-विरुद्ध, विज्ञान व सृष्टि-नियम के विपरीत, हास्यप्रद कथाओं

के कारण तुलसीकृत रामचरितमानस त्याज्य है। तुलसीदास ने रामचरितमानस के द्वारा अन्धविश्वास के समर्थन में बहुत बड़ा योगदान दिया है। स्वामी दयानन्दजी आर्यसमाज के आठवें नियम में लिखते हैं— 'अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।' यदि आप अपने ऐतिहासिक ग्रन्थ रामायण पर विधर्मियों द्वारा लगाए झूठे आक्षेपों को नहीं सुनना चाहते तो महर्षि वाल्मीकिजी कृत **रामायण** अवश्य पढ़ें और इन विधर्मियों को मुंहतोड़ जवाब दें। मैं आशा करता हूँ, जो तुलसीदास के कारण इस अन्धविश्वास रूपी जाल में पथभ्रष्ट हैं उनको इस लेख से वेद का सन्मार्ग मिलेगा। *****

धर्म पालक बेटियां

बेटियां, धरती का धर्म हैं, मानवता की मर्म हैं सहनशीलता की प्रतीक, सृष्टि की संवाहिका बेटियां, शक्ति स्वरूपा हैं, सृष्टि में अनूपा हैं पुरुष की सहचर्या हैं, समाज की आचार्या हैं

बेटियां, कर्मों में निपुणा हैं, सर्वहिता पुण्या हैं जीवन यात्रा की मित्र हैं, हर तरह से पवित्र हैं बेटियां जीवन धर्म की निर्मात्री हैं, मर्यादा, चरित्र, शील की गंगोत्री हैं प्रकृति की गोत्री हैं, वेदों की श्रोत्रिय हैं

बेटियां, अग्नि रूपा ऊर्वरेता हैं, जीवनधर्म की क्रेता हैं निखिल विश्व की जेता हैं, नवनिर्माण की नेता हैं बेटियां संवेदना की गीत हैं, सम्बन्धों में प्रीति हैं युगों-युगों की जीत हैं सबको संग ले चलने की रीति हैं

बेटियां, चन्द्र की शीतलता हैं, जीवन दर्शन की लता हैं अबूझ पहेली की व्यथा हैं सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की कथा हैं बेटियां, ईश्वर की भावुक कृति हैं, प्रकृति की पावन धृति हैं साधना पथ, साधिका और मानवता संवाहिका हैं।

— आ. अखिलेश

लक्ष्मी किसे प्राप्त होती है

- महात्मा चैतन्यस्वामी

महाभारत में धर्मराज युधिष्ठिर एक स्थान पर भीष्मजी से पूछते हैं—'लक्ष्मी किन गुणों से युक्त स्त्री-पुरुष के पास रहती है?' इसके उत्तर में भीष्म पितामह एक प्रसंग सुनाते हैं कि एक बार रुक्मणि ने लक्ष्मी से यही पूछा था और जब यह पूछा था तो स्वयं श्रीकृष्णजी भी उस समय उनके साथ थे। रुक्मणि के पूछने पर लक्ष्मी ने कहा था कि—

वसामि नित्यं सुभगे प्रगल्भे दक्षे नरे कर्मणि
वर्तमाने। अक्रोधने देवपरे कृतज्ञे जितेन्द्रिये
नित्यमुदीर्णसत्त्वे।। नाकर्मशीले पुरुषे वसामि न नास्तिके
सांकरिके कृतघ्ने। न भिन्नवृत्ते न नृशंसवर्णे न चापि
चौरं न गुरुष्वसूये।। ये चाल्पतेजोबलसत्त्वमानाः
क्लिश्यन्ति कुप्यन्ति च यत्र तत्र। न चैव निष्ठामि
तथाविधेषु नरेषु संगुप्तमनोरथेषु।। यश्चात्मनि प्रार्थयते न
किंचिद् यश्च स्वभावोपहतान्तरात्मा।। तेष्वल्पसन्तोषपरेषु
नित्यं नरेषु नित्यं।।.....

स्वाध्यायनित्येषु सदा द्विजेषु क्षत्रे च धर्माभिरते
सदैव वैश्ये च कृष्याभिरते वसामि शूद्रे च
शुश्रूणनित्ययुक्ते।। नाहं शरीरेण वसामि देवि नैवं मया
शक्यमिहाभिधातुम्।। भावेन यस्मिन् निवसामि पुंसि स
वर्धते धर्मयशोऽर्थकामैः।।

मैं सौभाग्यशाली, निर्भीक, कार्यकुशल, कर्मपरायण, क्रोधरहित, देवाराधन-तत्पर, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय तथा बड़े हुए सत्त्वगुण, स्वभावतः स्वधर्मपरायण, धर्मज्ञ, बृद्धों की सेवा में तत्पर, स्वभावतः सत्यवादी, सरलता से युक्त, विद्वानों व ब्राह्मणों का सम्मान करने वाली, सत्यवादिनी, सौम्यभेषभूषावाली, सौभाग्यशालिनी, सद् गुणवती, पतिव्रता, कल्याणमय आचार-विचार वाली और सत्पुरुषों में रहती हूँ। जिस घर में लोग अग्निहोत्र करते हैं उस घर में भी मैं नित्य निवास करती हूँ, सदा वेदों के स्वाध्याय में तत्पर रहने वाले ब्राह्मणों, स्वधर्मपरायण क्षत्रियों, कृषिकर्म में लगे वैश्यों और सदा सेवा कार्य में लगे रहने वाले शूद्रों में, मैं शरीर से निवास नहीं करती हूँ, यह मेरे लिए संभव भी नहीं है। जिस पुरुष में मैं भावना के द्वारा निवास करती

हूँ वह धर्म, यश और कामना से सम्पन्न होकर सदा बढ़ता रहता है। जब लक्ष्मी से यह पूछा गया कि वे किनके पास नहीं रहती हैं तो वे बोली—'अकर्मण्य, नास्तिक, वर्णशंकर, कृतघ्न, दुराचारी, क्रूर, चोर और गुरु-द्वैषी, जिनमें तेज-बल-सत्त्व और गौरव की मात्रा बहुत थोड़ी हो, जरा-जरा सी बात पर खिन्न होने वाला, मन के कुछ और भाव और दिखाता कुछ और हो, जो अपने लिए कुछ नहीं चाहता, जिसका अन्तःकरण मूढ़ता से ग्रसित हो, थोड़े में ही सन्तोष करने वाला हो उसके यहां मैं निवास नहीं करती, जो सोच-समझकर कार्य नहीं करती, वर्तन इधर-उधर बिखरे हों, अपने पति के सदा प्रतिकूल रहती हो, सदा दूसरों के घरों में बेकार घूमने वाली, जो लज्जाशील नहीं, पापाचार में रहने वाली, अपवित्र, चटोरी, धैर्यहीन, कलहप्रिय, नीन्द में बेसुध होकर सदा खाट पर पड़ी रहने वाली के यहां भी मैं निवास नहीं करती हूँ।'

लक्ष्मी ने अपने रहने के लिए जिन गुणों की अनिवार्यता बताई है तथा न रहने के लिए जिन अवगुणों की चर्चा की है, वास्तव में वे बहुत व्यावहारिक हैं क्योंकि गुणी एवं परिश्रमी व्यक्ति ही जीवन में धन-धान्य से सम्पन्न होता है और इसके विपरीत आलसी और अवगुणों से भरा हुआ व्यक्ति सदा ही कंगाल और अभावग्रस्त बना रहता है। वेद भी यही कहता है कि जिसका जीवन सरल और पवित्र होता है, उसे ही लक्ष्मी प्राप्त होती है। निष्कपट, अद्वैषी, सरल तथा उपरोक्त गुणों से परिपूर्ण जीवन कैसे बनाए इसके लिए वेद कहता है—

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान्। अर्यमा देवैः
सजोषाः।। (ऋ01-90-1)

(नः) हमें (विद्वान्) ज्ञानी (वरुणः) अपने हृदय से द्वेष का निवारण करने वाला श्रेष्ठ व्यक्ति (ऋजुनीती) सरल मार्ग से (नयतु) ले चले। हम विद्वानों का संग करके द्वेषरहित बनें क्योंकि द्वेष आपसी सद्व्यवहार का सबसे बड़ा शत्रु है। इसी प्रकार (विद्वान्) ज्ञानी (मित्रः) अपने को पापों से बचाने वाला, सबके प्रति स्नेह करने वाला प्रभु-प्रिय

व्यक्ति हमें सरल मार्ग से ले चले। ईर्ष्या—द्वेष और क्रोध का मार्ग कुटिलता का मार्ग है अतः हम विद्वानों की संगति में इनका भी त्याग कर सबके साथ मैत्री—भाव बनाए....मैत्री का मार्ग ही श्रेयष्कर होता है....यही हमें पापमुक्त करता है....(देवैः सजोषाः अर्यमा)सब दिव्य गुणों के साथ समानरूप से प्रीतिवाला—सम्पूर्ण दैवी सम्पत्ति को अपने में धारण करने वाला काम, क्रोध व लोभ का नियमन करने वाला(विद्वान्)ज्ञानी पुरुष हमें सरल मार्ग से ले चले....किसी उत्तम ज्ञानी के संग हम काम, क्रोध एवं लोभ से मुक्त होएं क्योंकि ये विकार व्यक्ति के जीवन को पतन की ओर ही ले जाते हैं....ये सब आसुरि सम्पदाएं हैं। इसके विपरीत हम तो अपने आप को दैवी सम्पदा के साथ जोड़ें....सरल जीवन के लिए हम वरुण,मित्र और अर्यमा के गुणों को धारण करें क्योंकि अगले मन्त्रों में कहा गया है कि इन गुणों से परिपूर्ण व्यक्ति ही धनों के स्वामी बनते हैं—

ते हि वस्वो वसवानास्ते अप्रसूरा महोभिः।व्रता रक्षन्ते विश्वाहा।।ते अस्मभ्यं शर्म यंसन्नमृता मर्त्येभ्यः।बाधमाना अप द्विषः।।(ऋ०1—90—2,3) (ते) वे गत मन्त्र में बताए गए वरुण,मित्र और अर्यमा के गुणों को अपने में धारण करने वाले ही (हि वस्वः वस्वानाः) निश्चय से धनों के धारण करने वाले होते हैं। जो व्यक्ति द्वेषरहित हैं,जिन्हें किसी से ईर्ष्या—द्वेष नहीं है,सबके साथ मित्र भाव लेकर वर्तते हैं तथा काम, क्रोध और लोभ से मुक्त हैं(ते)इन सिद्धान्तों को अपनाने वाले ऐसे व्यक्ति(महोभिः)तेजस्विताओं के साथ ज्ञानयुक्त होते हैं, (अप्रमूराः)वे अमूढ व ज्ञानयुक्त होते हैं।इनके शरीरों में बल और मस्तिष्क में ज्ञान होता है।इस प्रकार शरीर में बल और मस्तिष्क में ज्ञान को धारण करने वाले ये व्यक्ति(विश्वाहा)सदा ही(व्रता रक्षन्ते)अपने व्रतों का रक्षण करते हैं तथा अपना जीवन यज्ञमयी बना देते हैं।ये अपने पुण्यों को कभी भी विछिन्न नहीं होने देते हैं....(ते)वे मित्र,वरुण,अर्यमा के उपासक(अमृताः)संसार के विषयों के पीछे न मरने वाले देव पुरुष (अस्मभ्यम्) हम(मर्त्येभ्यः)वासनाओं से आक्रान्त होने वाले पुरुषों के लिए(शर्म यंसन्)कल्याण प्राप्त कराएँ।स्वयं के जीवन का उदाहरण व ज्ञान देकर वे (द्विषः अपबाधमानाः)द्वेष की भावनाओं को हमसे खदेड़ने वाले हों।इस प्रकार के गुणों से समन्वित व्यक्ति अधिकारपूर्वक कहता है कि—

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम्।।

(अथर्व०16—3—1),

नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम्।।

(अथर्व०16—4—1)

(अहम्) मैं (रयीणाम्) धनिकों का (मूर्धा) शिरोमणि और (समानानाम्) बराबर वालों का (मूर्धा) प्रधान (भूयासम्) होऊँ।रयि शब्द के अर्थ जहां भौतिक ऐश्वर्य है वहीं दूसरी ओर इसका अर्थ आध्यात्मिक ऐश्वर्य भी है।जो व्यक्ति गुणी होता है उसे सब प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं....वह चाहे किसी भी वर्ण विशेष का क्यों न हो,जितना—जितना वह गुणों से समन्वित होगा उतना—उतना ही वह ऐश्वर्यशाली होगा।इसलिए यहां पर गुणी व्यक्ति के द्वारा जो प्रार्थना वा घोषणा की गई है उसका भाव है कि यदि मैं ब्राह्मण हूँ तो ब्राह्मणों में सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी बनूँ,यदि क्षत्रिय हूँ तो बल में सब क्षत्रियों को पराजित करने वाला बनूँ। वैश्य हूँ तो अत्यधिक कमाने वाला व देने वाला बनकर वैश्यों का सर्वश्रेष्ठ बनूँ....मैं सदा शिखर पर ही बना रहूँ....इसी क्रम में आगे कहा गया कि (अहम्) मैं (रयीणाम्)सब ऐश्वर्यों का (नाभिः) अपने में बान्धने वाला बनूँ। इसी प्रकार (समानानाम्) अपने समान जाति वालों का भी (नाभिः भूयासम्) केन्द्र बन पाऊँ....मैं सब में श्रेष्ठ बनूँ... सभी मुझे अपना नेता मानें....*****

अखिल भारतीय साहित्यकार सम्मेलन

मित्रो! आप जानते हैं आर्य लेखक परिषद् आर्य लेखकों, पत्रकारों और विद्वानों की संस्था है। आप सभी कलम के धनी महानुभाव संस्था के अभिन्न साथी हैं। संस्था 7—8 सितम्बर 2019 को अखिल भारतीय साहित्यकार सम्मेलन आयोजित करने जा रही है। सभी कलमकार साथी इस कार्यक्रम में सादर आमंत्रित हैं।

तिथि — 7—8 सितम्बर 2019। शनिवार—रविवार।

स्थान — परोपकारिणी सभा, ऋषि उद्यान, आना सागर, अजमेर—राजस्थान

आर्यों की महान विद्या

ईश्वर प्रदत्त चार वेद

वेद	प्राप्तकर्ता	विषय
ऋग्वेद	ऋषि अग्नि	ज्ञान
यजुर्वेद	ऋषि वायु	कर्म
सामवेद	ऋषि आदित्य	उपासना
अथर्ववेद	ऋषि अङ्गिरा	विज्ञान

ऋषिकृत ग्रन्थ

छः अङ्ग

छः उपाङ्ग

१. शिक्षा

२. कल्प

३. व्याकरण

४. निरुक्त

५. छंद

६. ज्योतिष्

दर्शन

१. पूर्वमीमांसा

२. वैशेषिक

३. न्याय

४. योग

५. सांख्य

६. वेदान्त

रचियता

जैमिनि मुनि

कणाद् मुनि

गौतम मुनि

पतंजलि मुनि

कपिल मुनि

व्यास मुनि

वेद

उपवेद

उपवेद का विषय

ब्राह्मण ग्रन्थ

ऋग्वेद का

१. आयुर्वेद

वैद्यक शास्त्र

१. ऐतरेय ब्राह्मण

यजुर्वेद का

२. धनुर्वेद

राजनीति विद्या

२. शतपथ ब्राह्मण

सामवेद का

३. गान्धर्ववेद

गानविद्या

३. साम ब्राह्मण

अथर्ववेद का

४. अथर्ववेद

शिल्प विद्या

४. गोपथ ब्राह्मण

दस उपनिषद्

१. ईश २. केन ३. कठ ४. प्रश्न ५. मुण्डक

६. माण्डूक्य ७. ऐतरेय ८. तैत्तिरीय ९. छान्दोग्य १०. बृहदारण्यक

ऋषि निर्देश - इनमें भी जो-जो वेद विरुद्ध प्रतीत हो उसे छोड़ देना क्योंकि वेद ईश्वरकृत होने से निर्भ्रान्त, स्वतः प्रमाण, अर्थात् वेद का प्रमाण वेद से ही होता है ब्राह्मणादि ग्रंथ परतः प्रमाण अर्थात् इनका प्रमाण वेदाधीन है।

आर्य विद्या का प्रवेश द्वार - "सत्यार्थप्रकाश एवं ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका"